अग्निशिखा एवम् पुरोधा

अखिल भारतीय पत्रिका

दिसम्बर २०२३

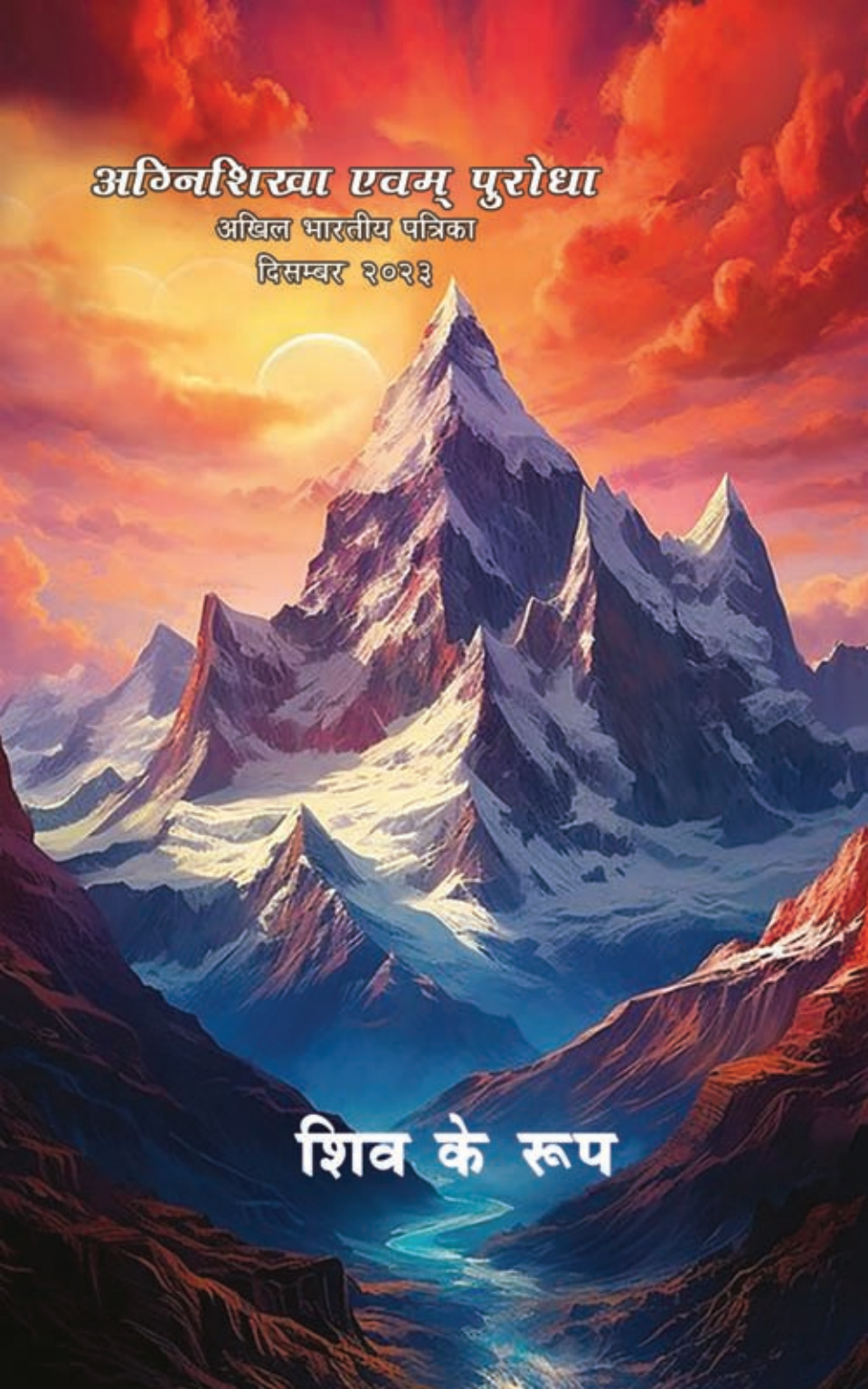

शिव के रूप

अग्निशिखा एवम् पुरोधा दिसम्बर २०२३ वर्ष १, अंक ५, पूर्णांक ५

विषय-सूची

शिव के रूप

(श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द के वचन)

प्रार्थना/सम्पादकीय		३
शिव के विभिन्न रूप		४
शिव तथा सती की कथा		११
शिव तथा नव सर्जन		१५

पुरोधा

दैनन्दिनी		२३
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : शान्ति, नियति तथा योग	नवजातजी	२७
'अप्रत्याशित' का मुहूर्त	नलिनीकान्त गुप्त	३०
आध्यात्मिक मनुष्य		३२
शाश्वत ज्योति	चित्रा सेन (अनु. वीणा)	३३
इबादत		३५
सच्चे पुण्य का भागी	श्री रामेश्वर टांटिया	३६
प्रसन्नता साधना का नमक है	आयंगार कृत 'ऑन द मदर' पुस्तक से	४०
अनाहत नाद (कविता)	स्वामी रामनिरञ्जन तीर्थ 'नागौर'	४२
महर्षि पाणिनी के जीवन की दो कहानियाँ	वन्दना	४३
अनुकम्पा	मकरन्द दवे	४८

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५४वाँ वर्ष चल रहा है।

प्रार्थना

१४ सितम्बर १९१४

अब कोई "मैं" बाक़ी नहीं है, कोई व्यक्तित्व नहीं है, कोई व्यक्तिगत सीमाएँ नहीं हैं। है केवल विशाल विश्व, हमारी परम जननी, जो हे प्रभो, हे दिव्य स्वामी, हे परम 'संकल्प', तेरे सम्मान में पवित्रता की तीव्र अग्नि में जल रही है ताकि इस 'संकल्प' की सिद्धि के मार्ग में और कोई बाधाएँ न आने पायें।

हे प्रभो, तेरी ओर उत्साह-भरे प्रेम और उल्लास का गान उठ रहा है और पृथ्वी अनिर्वचनीय आनन्द के साथ तेरे साथ युक्त होती है।

ऐसी कृपा कर कि तेरा समर्थ श्वास वेदी को पवन दे ताकि वह सदा अधिकाधिक विस्तृत और अधिकाधिक दुर्जेय बन जाये, कि समस्त अन्धकार और अन्ध प्रतिरोध सोख लिया जाये, प्रज्वलित हो उठे और अद्‌भुत पवित्र ज्वाला द्वारा 'प्रकाश' में रूपान्तरित हो जाये।

कैसी शान्तिदायक दीप्ति है तेरे पवित्रीकरण में!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १४१

सम्पादकीय : शिव नाम के उच्चरण-मात्र से तुरन्त अहोभाव, शक्ति-सामर्थ्य, हितैषिता तथा कृपालुता के समस्त भाव फूट पड़ते हैं, विनाश का नर्तन नूतन सर्जन के परम हर्ष को गलबहियाँ किये चलता है।

यह अंक शिव के कई रूपों और पहलुओं को समर्पित है—उनके पराक्रमी संन्यासी-भाव से लेकर उनके दयालु तपस्वी-भाव को समटे हुए है।

शिव के विभिन्न रूप

निश्चेतन स्रष्टा
(तपस्वी)

एक मुख शीतल दारुण गिरि-शिखरों पर भव्य और अचल
इसकी शृंखलाएँ श्वेत और सरल
अतुल्य बर्फ़ीली धारियों के साथ खाती हैं मेल
जो अनमनीय औ' विशुद्ध स्वर्ग को करतीं विरल।

इसके ऊपर है गूँथित केशों का एक पहाड़
उस अमर्त्य व एकमात्र शीर्ष पर चिरकालीन कुण्डलित
निर्जीव वायु के अपने एकाकीपन में विशाल
वर्तुल, ऊपर असीम रूप से व्याप्त।

एक चन्द्र-किरण ने ललाट पर, नील और पीत,
दूर-दूर तक अपनी उँगली शीतल ज्योति की कर दी विस्तृत
रिक्तता को करती ज्योतित।
शान्ति का कठोर व नर-मुखौटा शक्ति में तटस्थ!

किन्तु अब हुआ प्रकट कुछ अनन्त से उत्पन्न
भीमकाय हिमराशि व प्रशान्त मुख के ऊपर
एक स्पन्दन व क़िरमिज़ी ज्वाला का रंग,
अन्तरिक्ष की अनन्तताओं में एक अग्नि-कण।

ज्योति के बरछों की नोकों ने शक्तिशाली रूप किया उद्घाटित
हृदय की पकड़ के रहस्यमय आवरण को कर दिया विदीर्ण;
उस हीरक हृदय में होती हैं अग्नियाँ अनावृत,
जीवन्त क्रोड, स्वर्ण का एक अग्निकुण्ड।

यह था बन्द उद्गम मूक तथा ज्वलन्त
जहाँ से हुए रूपायित जगत् और नक्षत्र-नृत्य उनके;
उछल पड़ा प्राण एक आत्म-लीन शक्ति निश्चेतन
प्रेम, एक ज्वलन्त बीज, उस ज्वाला की समाधि से।

CWSA खण्ड २, पृ. ५४८-४९

गंगाधर

(गंगा के प्रति)

सुनो गंगा, सुनो, तू होती है सागर की ओर स्वर्णमय प्रवाहित,
सुनो मातः, सुनो मेरी वाणी।
हरि के चरणों से अपने पावन जल के साथ लगाती मुक्त छलाँग,
हिम से शीतलतर-शुद्ध जलराशि।

हिमालय के भव्य शिखरों पर खड़ी शिलाओं के हिमज गह्वर में
अपने-आप शिव हैं वायु में निःश्वास आसीन,
जहाँ परित्यक्त माँगता है शरण, जहाँ दैत्य-सेना करती विलाप
उनके केशों में करती गंगा विपथगमन।

हिम-श्वेत पर्वतों से नीचे अमर्त्य शिखरों पर शीतल धावती,
भर जातीं तेरी लहरें मानव से अछूती।
गंगोत्री से उद्‌गमित, घाटियों से होती हिम-शिखरों पर लोटती,
हिमाद्रि से होती, करती धावन छलकती।

निष्कलंक काशी में दूषण से अछूती
घाटों व मन्दिरों को अपनी उँगलियों से
धीरे से करती स्पर्श, करती हलकी मुस्कान, तू धावती
शुद्धता में बालवत्, अपनी माता के वक्ष में चिपके हुए जैसे।

जहाँ राम के चरणों ने किया भ्रमण, जहाँ कृष्ण के पड़े चरण,
वहाँ होती तू प्रवाहित, वहाँ तेरा हस्त करता आलिंगन हमारा
भागीरथी, जाह्नवी या गंगा, और तेरा नाम
बनाता है पावनतर देश आर्यों का।

CWSA खण्ड २, पृ. २५६-५७

जगत् की सहायता करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है, अपने-आपको सर्वांगीण और एकाग्र योग द्वारा रूपान्तरित करना।

—श्रीमाँ

परोपकारी भिक्षुक

हमारे शिव देवों में परम देव हैं, फिर भी वे भिक्षुक हैं, मनमौजी हैं, निश्चिन्त और भुलक्कड़ हैं; हमारे कृष्ण युवा हैं, हास्य, मौज तथा प्रेम के प्रेमी हैं, उनका स्वभाव ही विनोदी है। यूरोप के देवता कभी नहीं हँसते, कभी नहीं खेलते, क्योंकि इन गतिविधियों से महामहिम को चोट पहुँचती है, उनके देवत्व दुःख भोगते हैं। उसकी पृष्ठभूमि में बहिर्मुख मनोभाव होता है—उनके लिए समृद्धि के लक्षण वहीं होते हैं जहाँ ऐश्वर्य हो, भव्यता का सहारा हो, जब तक वे लक्षण नहीं देख लेते वे वस्तु को स्वीकारते नहीं, (यही कारण है कि वे भिक्षुक शिव को देवता नहीं मानते) उनके यहाँ कोई देवता नहीं होते, कोई सूक्ष्म दर्शन नहीं होता, सब कुछ भौतिक होता है। हमारे शिव भिक्षुक हैं, लेकिन आध्यात्मिक जिज्ञासु को वे आसानी से तीनों लोकों की समस्त ऋद्धि-सिद्धि और ज्ञान दे देते हैं; वे उदारता का मूर्त रूप हैं, बुद्धिमान् मनुष्य की पहुँच के परे का ज्ञान उनका जन्मजात अधिकार है। हमारे दुलारे, सबके चहेते कृष्ण कुरुक्षेत्र के नायक हैं, जगत्पिता, विश्व के सखा तथा सुहृद् हैं। भारतवर्ष का महान् ज्ञान, सूक्ष्म दर्शन तथा उन्मुक्त भागवत अन्तर्दर्शन जड़-भौतिक परदों को भेद कर आन्तरिक मनोभाव, सच्चे सत्य और आन्तरिक तथा सूक्ष्म सिद्धान्तों को प्रकाश में ले आता है।

श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से, पृ. २५३-५४

सर्जक तथा विनाशक के रूप में शिव

वह तिहरी सत्ता है, प्रज्ञा, हिरण्यगर्भ और विराट्; प्रज्ञा—सुषुप्ति-जीवन की स्वामिनी, वह मेधावी शक्ति जो अन्यथा जड़, निर्जीव जीवन प्रतीत होने वाली सत्ता में जीती और जागती है या जो यान्त्रिक शक्तियों का अन्धा खेल है। हिरण्यगर्भ—स्वप्न-जगत् का स्वामी जो इस अवचेतन रूप से मेधावी आध्यात्मिक सत्ता के सागर में से उन सचेतन चैत्य शक्तियों को लेता है जिन्हें वह मूर्त रूप देता है अथवा स्थूल सजीव पदार्थ के विभिन्न रूपों में मढ़ता है; फिर विराट्—जाग्रत् जीवन का स्वामी, वह उस संवेदनशील सृष्टि पर शासन करता है, उसका पालन-पोषण और उसकी देख-रेख करता है जिसे हिरण्यगर्भ ने आकार प्रदान किया है। वह फिर से शिव, ब्रह्मा और विष्णु के रूप में एक और त्रयी है, शिव है संहारक, योगी, पशुपति, समाधि का स्वामी, श्मशानपति और अशरण-शरण। ब्रह्मा—स्रष्टा, जो जीवन को प्रस्तुत करता है और अपने हाथ को क्षण-भर के लिए भी नहीं रोकता;

विष्णु—परिरक्षक, त्राता, शक्ति और प्रेम, जीवन, ज्योति और मधुरता का स्वामी। ईश या प्रभु के इन सब रूपों के साथ हिन्दू पूजा-अर्चना ने कुछ नाम और रूप जोड़ दिये हैं और ईश भी अपने-आपको अपने पुजारियों के आगे उन्हीं नाम-रूपों में प्रकट करता है। ज्ञानयोगी ईश को शिव के उच्चतम समाधि के स्वामी के रूप में पूजना पसन्द करता है। भक्त के आगे वह उसके आध्यात्मिक भावों के अनुकूल उसको लुभाने वाले रूप में प्रकट होता है, लेकिन कर्मयोगी को स्वयं परम पुरुष के उन रूपों के अर्पण करना चाहिये जिनमें उसकी महान् शक्ति, जीने और सृजन करने की इच्छा ने अपने-आपको अपने उच्चतम, शुद्धतम, अधिक-से-अधिक प्रेरणादायक ओजस्वी पौरुष में प्रकट किया है, क्योंकि कर्म केवल गतिशील शक्ति है और कर्मयोगी को जगत् में दिव्य ऊर्जा का शुद्ध वाहक, निःस्वार्थ वीर और स्रष्टा होना चाहिये। स्वयं ईश ने अपने अवतारों—बुद्ध, राम, श्रीकृष्ण में हमें अपनी उच्चतम निःस्वार्थ दिव्य ऊर्जा के प्रारूप दिये हैं अतः कर्मयोगी को अपनी पूजा-आराधना इन महान् आत्माओं, भागवत पुरुषों की ओर प्रेरित करनी चाहिये। या फिर वह ईश की पूजा उसकी शक्ति में, अभी तक मानव मन ने उच्चतम वैश्व शक्ति के जिस सबसे प्रबल रूप को देखा है, उस दुर्गा-काली के रूप में कर सकता है। अगर वह रूपों को छोड़ सकता है तो वह स्वयं ईश के, उस सर्वशक्तिमान् प्रभु के विचार को पूज सकता है जिसकी आराधना हिन्दू हरि के, ईसाई गॉड के और मुसलमान अल्लाह के रूप में करता है। और नास्तिक भी, यदि वह समस्त जीवन और अस्तित्व में काम करने वाली महाशक्ति को पहचानता या स्वीकार करता है और अपने स्व और अपने कर्म को उस शक्ति की इच्छा और उसके उद्देश्यों को अर्पित करता है, अगर वह मनुष्यों में उस देव को स्वीकार करता है जिसे वह विश्व में स्वीकार करने से इनकार करता है और अपने-आपको अपनी जाति की निःस्वार्थ सेवा में लगा देता है तो उसने भी अपने चरण कर्मयोग के मार्ग पर रख दिये हैं और वह उस प्रभु तक पहुँचे बिना नहीं रह सकता जिसे वह अस्वीकार करता है। इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि कर्मयोगी किसी विशेष नाम या रूप को माने, उसे अपनी बृहत्तर आत्मा के रूप में स्वीकार करे जिसे जीत लेने के लिए उसे अपनी लघुतर आत्मा को खोना पड़ेगा। लेकिन ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण यह है कि वह अपने अन्दर और अपने बाहर एक शक्ति की उपस्थिति को स्वीकार करे जिसकी इच्छा और क्रियावली के विधान पर वह प्राकृतिक मनुष्य की अपनी इच्छा और अपनी

आराधना को न्योछावर कर सके। वह इस शक्ति को जो नाम चाहे दे ले, वह उसे नाम दे या न दे, वह ईश ही है जिसकी उपस्थिति का अनुभव उसे इस विश्व की हर वस्तु और हर क्रिया के चारों ओर करना चाहिये। CWSA खण्ड १७, पृ. १७६-७८

शान्तिमय शिव

श्रीमाँ ने तुमसे कहा था कि ऐसा लगता है कि भगवान् के बारे में तुम्हारी एक रूढ़ धारणा है, मानों वे पहुँच के एकदम बाहर कहीं कोई 'सत्ता' हैं और जिनसे तुम आशा रखते हो कि वे तुम्हें 'आनन्द' नामक वस्तु प्रदान करेंगे, और जब उसे मिलने की कुछ सम्भावना होती है, तुम्हारा उनके साथ अच्छा सम्बन्ध होता है, लेकिन जब वे तुम्हें वह वस्तु प्रदान नहीं करते तब तुम उनसे झगड़ते हो, विद्रोह पर उतर आते हो और उन्हें बुरा-भला कहने से भी नहीं चूकते! और उन्होंने कहा था कि भगवान् को प्राप्त करने की इस तरह की धारणा रखना अपने-आपमें एक बड़ी बाधा है—क्योंकि यह सत्य से एकदम छिटकी हुई होती है। अन्ततः तुम किस आनन्द की खोज में हो? मन तो इस आनन्द में बस एक तरह की सुखद मनोवैज्ञानिक अवस्था का अनुभव करता है—लेकिन अगर यह केवल यही होता तो वह परमानन्द कभी नहीं होता जिसका भक्त तथा गुह्यवादी अनुभव करते तथा बखान करते हैं। जब तुम्हारे अन्दर आनन्द आता है तो वे भगवान् ही हैं जो तुम्हारे अन्दर प्रवेश करते हैं; ठीक उसी तरह जब 'शान्ति' तुम्हारे अन्दर प्रवाहित होती है, वे भगवान् ही हैं जो तुम पर हावी होते हैं, या जब तुम 'प्रकाश' की बाढ़ से आप्लावित हो जाते हो तो वह स्वयं भगवान् ही की बाढ़ है जो तुम्हारे चारों ओर व्याप्त है। भगवान् इससे कहीं अधिक हैं; इन सभी चीज़ों से निश्चित रूप से, परे भी बहुत कुछ हैं और इन सभी में एक 'उपस्थिति', एक 'सत्ता' और एक 'भागवत व्यक्तित्व' विराजमान है; क्योंकि भगवान् कृष्ण हैं, वे शिव हैं, वे परमा माता हैं। 'आनन्द' के द्वारा तुम आनन्दमय कृष्ण का अनुभव कर सकते हो; क्योंकि कृष्ण का सूक्ष्म शरीर तथा सत्ता आनन्द ही है; 'शान्ति' के द्वारा तुम शान्तिमय शिव का अनुभव कर सकते हो; 'प्रकाश' में, उद्धारक ज्ञान में, 'प्रेम' में, कार्य सम्पन्न करने तथा ऊँचा उठाने वाली 'शक्ति' में तुम माँ भगवती की उपस्थिति को पा सकते हो। यही है वह बोध जो भक्तों तथा गुह्यवादियों की अनुभूतियों को इतना हर्षोन्मादक बना देता है कि वे वेदना तथा विरह की रात्रियों को अधिक आसानी से पार

करने में समर्थ होते हैं—जब यह आत्म-बोध प्राप्त होता है तो वह अचिर 'आनन्द' भी प्राप्त हो जाता है, और जैसे-जैसे यह बोध विकसित होता जाता है वह आनन्द बढ़ता जाता है, लौट-लौट कर आता रहता है। जब श्रीमाँ ने तुमसे यह कहा था कि "भगवान् से यह माँग मत करो कि वे तुम्हें आनन्द दें, यह माँगो कि वे अपने-आपको तुम्हें दे दें" तो उनका यही अर्थ था—यानी यह कि 'आनन्द' में तथा 'आनन्द' के द्वारा वे 'स्वयं' को तुम्हें सौंप देंगे। तब यह कहने का कोई कारण न रह जायेगा—"मैं भगवान् से परिचित नहीं हूँ। मैंने कभी उनका अनुभव नहीं किया, मैं कभी उनसे मिला नहीं।" अन्य अनुभूतियाँ पाने के लिए भी यह एक प्रवेश-द्वार बन जायेगा और तब भौतिक वस्तुओं में, मानव-रूप, मानव-शरीर में भी भगवान् के दर्शन पाना, उन्हें अनुभव करना आसान हो जायेगा।

CWSA खण्ड २९, पृ. १४-१५

शिव तथा रुद्र

धीर पुरुष जगत् की प्रत्येक घटना को सूक्ष्म दृष्टि से देखता है, और अगर वह उसके पीछे के सत्य को तुरन्त नहीं देख पाता तो प्रतीक्षा करता है कि उसके अन्दर ज्ञानोदय हो और वह घटना के पीछे के चरम उद्देश्य को समझ सके। इस तरह शान्त मन से प्रतीक्षारत, उसके हृदय में जीवन के सत्य की पौ फटती है और छोटी तथा बड़ी प्रत्येक घटना में, शुभ और साथ ही अशुभ में भी उसके सम्मुख वस्तुओं का परम रहस्य खुल जाता है : सर्वज्ञ परमात्मा स्वयं को पक्षी की उड़ान में, चींटी की मृत्यु में और साथ ही ऐसे भूकम्पों में दर्शाते हैं जो महान् नगरों को पूरी तरह विध्वस्त कर देते हैं, ऐसी बाढ़ों में जो हज़ारों-लाखों को बेसहारा, बेघर छोड़ देती हैं। तब रुद्र और शिव, यानी, संहारक और पालक दोनों अपने-आपको एक ही रूप में दर्शाते हैं। योगी सभी चीज़ों में प्रभु के दर्शन करता है, न केवल सभी प्राणियों में बल्कि सभी घटनाओं में भी। वे ही बाढ़ हैं, वे ही भूकम्प हैं, वे ही वह 'महामृत्यु' हैं जो उच्चतर जीवन की ओर ले जाती है, वह पीड़ा हैं जो हमें उच्चतर आनन्द के लिए तैयार करती है। यह ऐसी चीज़ है जिसके बारे में तर्क नहीं किया जा सकता, इसे देखना होता है। *परिपश्यन्ति धीराः*। यह दृष्टि उसी को प्राप्त होती है जिसका हृदय शान्त हो और जिसका विवेक अविचलित।

CWSA खण्ड १३, पृ. ६१-६२ **श्रीअरविन्द**

करुणामय

मधुर माँ, "भागवत विरक्ति" क्या है?

ओह, मेरे बच्चे! (मौन) यह ऐसी विरक्ति है जो असीम करुणा से भरपूर है।

यह ऐसी चीज़ है जो ख़राब स्पन्दनों को अपने ऊपर ले लेती है ताकि दूसरे उससे मुक्त हो जायें। परिणाम... *(मौन)* ग़लत और निम्न गतिविधि के परिणाम को—क्रूर न्याय के साथ भूल करने वाले पर फेंकने की जगह, यह उसे आत्मसात् कर लेती है ताकि उसे अपने अन्दर परिवर्तित कर सके, और की गयी भूल के भौतिक परिणामों को यथासम्भव कम कर दे। मेरा ख़याल है कि भगवान् शिव की वह पुरानी कहानी इस भागवत विरक्ति को अभिव्यक्त करने का कल्पनात्मक तरीक़ा है, जिसमें उनके गले पर एक काला दाग़ पड़ गया था क्योंकि उन्होंने जगत् में जो कुछ अशुभ था उसे निगल लिया था! इससे उनके गले पर काला दाग़ पड़ गया।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३२५-२६

शिव तथा सती की कथा

('वन्दे मातरम्' (२९ अप्रैल, १९०८) के सम्पादकीय में छपी सती की इस दृष्टान्त कथा में श्रीअरविन्द ने राष्ट्रवादी दल और नरम दल के संघर्ष को दर्शाया है।)

महान् प्रजापति दक्ष की एक कन्या थी, नाम था सती। वह उसे अपने सब बच्चों से अधिक प्यार करता था। लेकिन ऋषि ने उसका विवाह सर्वलोक-महेश्वर महादेव से रचा दिया। ऋषि का यह पर-चयन दक्ष को पसन्द नहीं आया, क्योंकि वह महादेव में ऐसा कुछ विशेष न देख पाया, सिवाय इसके कि वह भिक्षा-पात्र हाथ में लिये, शरीर पर भभूत रमाये, व्याघ्रचर्म धारण किये, भूतगणों और निशाचरों के साथ घूमने वाला, बिना घर-घाट का एक यती है। उसके प्रति उसकी जुगुप्सा और भी बढ़ गयी जब उसने जाना कि वह एक भँगेड़ी, आलसी, निठल्ला आदमी है, आजीविका का उसके पास न कोई निश्चित साधन है, न घर-बार है, न कोई सम्पत्ति है, न ही उसके पास कोई उपाधि या शिक्षा-योग्यता है और न ही संसार में उसकी कोई टेक, प्रतिष्ठा है। उसने ऋषि को कोसा कि वह उन लोगों में से लगता है जो मूर्ख, अशुभ मन्त्रणा देने वाले, अव्यावहारिक व कल्पना-जीवी होते हैं तभी तो उसे इस जटाजूटधारी, भिक्षा-पात्री कंगाल में लोकमहेश्वर के दर्शन हुए। अतः उसने जब महान् यज्ञ सम्पन्न करने का निश्चय किया तो सब देवताओं को निमन्त्रण भेजा पर जान-बूझकर अपने जामाता को उससे वञ्चित रखा। इसका परिणाम हुआ महाविध्वंस। सती ने अपने स्वामी के अपमान से दुःखी और रुष्ट होकर अपना शरीर त्याग दिया और मानव परिप्रेक्ष्य से लुप्त हो गयी। तब आये रोष में भरे हुए महादेव, एकमेव शक्तिमान्, विश्व प्रलयंकर महादेव, और उन्होंने दक्ष का यज्ञ भंग कर दिया, यज्ञशाला को चूर्ण-विचूर्ण कर डाला और दक्ष को उसके कक्ष में ही मार डाला।

*

दक्ष एक और भी था भारत में, जिसे भारतीय काँग्रेस कहा जाता था। दक्ष के समान ही उसका भी महान् प्रताप था—एक प्रजापति—उसके

अनेक पुत्र थे। वे सम्माननीय, शान्त और बुद्धिमान् थे। देवतागण इनका बहुत आदर करते थे। इस दक्ष की भी एक कन्या थी जिसे वह बहुत प्यार करता था—बाल 'भारत राष्ट्रीयता'। विवाह-योग्य उम्र होने पर उसने जिसको अपने दूल्हे के रूप में चुना, वह था 'भारत-भाग्य' जिसे ऋषि ने प्रस्तावित किया था और जिसे उन्होंने महादेव घोषित किया था और कहा था कि यही उसका दैवनिर्दिष्ट पति है। इसके साथ उसकी आमने-सामने पहली मुलाक़ात हुई पावन भूमि बनारस में और वहीं उसके साथ मँगनी भी हो गयी। शादी कलकत्ते में हुई, एकता के सूत्र में बाँधने वाली विधि के चौहरे मन्त्रों के (स्वराज, स्वदेशी, बॉयकॉट, राष्ट्रीय शिक्षा के) उच्चारण के साथ। दक्ष को यह गठबन्धन रुचा नहीं था पर चूँकि ऋषि आग्रहशील थे और सती अडिग; अतः विवश उसे अपनी स्वीकृति दे देनी पड़ी थी। उसने ऋषि को जी-भर कर कोसा था—"भला, यह कैसा दूल्हा है जिससे उन्होंने मेरी सती को ब्याह दिया? बिना ठौर-ठिकाने का एक भिखारी, एक तो जंगली तिस पर भँगेडी होने की वजह से आधा झक्की, जिन पिशाचों और भूतगणों को साथ लिये वह पहाड़ों पर घूमता-फिरता है वे संस्कृति, आलोक और शिक्षा से रहित हैं, बातचीत में उजड्ड, बर्ताव में रूखे, अर्ध-नग्न और अभाव-ग्रस्त लोग हैं, उनका न कोई भूत है, न वर्तमान, न कोई भविष्य। फिर भी वे उन्मादी लोग उसे लोकमहेश्वर, सर्वसमर्थ भगवान् का अवतार और न जाने क्या-क्या कहते हैं!" अतः उसने अपना दुःख और रोष छिपा तो लिया था पर बदला लेने की ठानी थी! इसी से सर्वसमर्थ महादेव—भारत-भाग्य—को चिरकाल तक वीरान होकर भटकना पड़ा, कर में कमण्डल लिये ग़रीब और दरिद्र के रूप में, भभूत रमाये, बाघम्बर पहने एक यती के रूप में उसे रहना पड़ा, उसके पास सिर पर साये के लिए अपना कोई घर भी न था। शादी के लिए जब वह आया था तब उसका भेष भीतिकर था, उसकी मण्डली में अभद्र लोग थे, उद्दाम अन्तःप्रेरणा की भाँग पीकर वह उन्मत्त था और अपने ऊँचे शीर्ष स्वर से 'बमबम बन्देमातरम्' का घोष कर रहा था, देखने में वह अप्रशंस्य था, शिष्ट, सुसंस्कृत, सभ्य जनों की—जैसी कि दक्ष ने उस समय अपनी मित्र-मण्डली जुटा रखी थी—संगति के अनुपयुक्त था, दरिद्र, मलिन जटाजूट-धारी, अर्धनग्न था, निर्वाह का कोई व्यक्त साधन और भविष्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा उसके पास

न दीखती थी, और उसके सहचर थे लाठी लिये राष्ट्रीय स्वयं-सेवकों के दल के उग्र लोग और दूसरी-दूसरी क्षोभकारी मनोकल्पनाएँ भी थीं जो दक्ष के सुरुचिपूर्णता के साथ सजाये गये—भव्य विवाह-मण्डप के अयुक्त थीं। तब दक्ष भला कैसे इस कुत्सित आकृति में विश्व के प्रलयकर्ता और सृष्टिकर्ता के दर्शन कर सकता था, उस एकमेव के दर्शन कर सकता था जिसके हाथों में भारत का और संसार का भविष्य निहित था? इसे तो केवल ऋषि ही जान सकते थे, पर उन्हें उनके उदात्त प्रयासों के कारण स्वप्न-विलासी और झक्की कहा गया था।

*

विवाह के एक वर्ष पश्चात् दक्ष ने एक महान् वार्षिक यज्ञ करने की तैयारी की और बड़े धूम-धड़ाके के साथ उसे सम्पन्न करने चला। उसका दृढ़ संकल्प था कि वह सर्वसमर्थ महादेव को इस यज्ञ से बहिष्कृत रखेगा, सो उसने प्रवेश के ऐसे नियम बनाये कि अवाञ्छित जामाता भविष्य में भी उससे बाहर ही रहे। परिणाम सर्वविदित है। 'भारत-भाग्य' जिसे दक्ष ने बहिष्कृत करने की कोशिश की, रोष में आ धमका और यज्ञशाला के द्वार पर आघात किया। और जब दक्ष के भाड़े के टट्टुओं ने उसे मार कर खदेड़ डालना चाहा तो उसने यज्ञशाला को तोड़ डाला, यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और दक्ष को उसके भवन में ही मार डाला।

*

कहानी आगे यह है कि महादेव ने दक्ष की ओर से जीवन के प्रतिदान के लिए अभ्यर्थना की, पर जब दक्ष के सिर की खोज मची तो वह कहीं मिला नहीं, विलम्ब को न सह अविलम्ब एक बकरे का सिर हतभाग्य प्रजापति के कन्धों पर बिठा दिया गया। जब आधुनिक दक्ष की मृत्यु हुई तो उसे पुनरुज्जीवित करने की वैसी ही इच्छा लोगों में देखने में आयी पर सिर मिला नहीं। कुछ ने कहा कि खो गया है, दूसरों ने अधिक क़ानूनी भाषा में यह प्रमाणित करना चाहा कि वह अपना काम पूरा कर निवृत्त हो गया। ख़ैर, ठीक उसी समय इन सयानों को भी एक बकरे का सिर मिल गया जिसे उन्होंने धर्ममत कहा और उसे दक्ष के कन्धों पर चेप कर उसके धड़ में जान डाल दी और ज़ोर देकर घोषित किया कि बकरे के सिरवाले, लँगड़े इस अपधर्म को भविष्य में दक्ष कहा जाये। दुर्भाग्य से उन्होंने बकरे

का सिर ग़लत बिठा दिया और सारी चीज़ को और भी हास्यास्पद बना डाला, वह ऐसे बिठाया गया कि उसका मुँह पीछे की ओर था और जब वह विकलांग विरूपाकृति जीव धकिया कर बढ़ना चाहता तो उसकी प्रगति एक अवनति होती है और उसका आगे बढ़ना पीछे हटना होता है। क्योंकि उसकी आँखें भूतकाल की ओर हैं, भविष्य की ओर नहीं।

*

सर्वसमर्थ महादेव, इस अन्तराल में, सती के मृत शरीर को अपने कन्धों पर उठाये, प्रलयंकर ताण्डव नृत्य करते हुए जगह-जगह घूमते फिरे। इससे धरती का आसन डोल गया। सती ने यद्यपि अपना पुराना शरीर छोड़ दिया था और लोगों ने कहा था कि वह मर गयी है, पर वह मरी नहीं थी, केवल लोकदृष्टि से ओझल हो गयी थी। तब देवताओं ने आकर सती के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये ताकि उसे भारत-भर में छितराया जा सके। यह चीज़ भी एक दृष्टान्त-कथा है। काँग्रेस की मृत्यु के बाद भारत-एकता का, जो कि काँग्रेस की बेटी है, कार्यक्षेत्रों और गुटों में बँट जाना अवश्यम्भावी है। 'सभा' का पहले ही पार्टियों में परिवर्धन होना शुरू हो गया है और आने वाले काल में, जो कि उग्र होगा, राष्ट्रवादी दल भी पार्टियों में विभक्त हो जायेगा, जिनमें कुछ तो ऐसी भी होंगी जो हमारे साथ अब तक जुड़े 'उग्रपन्थी' नाम को भी बहुत हलका और अनुपयुक्त ठहरा देंगी। भारत का राजनीतिक जीवन अराजकतापूर्ण हो उठेगा। पर हमेशा के लिए नहीं। क्योंकि सती फिर से जन्म लेगी, ऊँचे पहाड़ों पर, उत्कट प्रयास, विराट् अभीप्सा और अप्रतिम आत्म-दान के पहाड़ों पर एक श्रेष्ठतर और भव्यतर शरीर में फिर से जन्म ग्रहण करेगी और अपनी घोर तपस्या से महादेव को फिर से वरेगी और अधिक अभिजात रीति से उसके साथ विवाह-सूत्र में बद्ध होगी। क्योंकि यह विधाता की बही में चढ़ा हुआ है और कोई भी इसे मिटा और रोक नहीं सकता कि सती का विवाह महादेव से होगा, कि भारत की राष्ट्रीयता अपने दिव्य और अत्यन्त शक्तिमान् भाग्य को वरेगी और उससे विभूषित होगी।

CWSA खण्ड ७, पृ. १०७३-७७ **श्रीअरविन्द**

तू मनुष्य है, मनुष्य का पूरा स्वभाव है—मनुष्य से ऊपर उठना।—श्रीमाँ

शिव तथा नव सर्जन

रूपान्तर के पथ को गढ़ते शिव

जो अन्तर्दर्शन तुमने देखा वह लक्ष्य की ओर बढ़ने का संकेत था। मार्ग में शिव हैं वह 'शक्ति' जो प्रकाश को उँडेलते हैं, लेकिन साथ ही साधक की जाँच भी करते हैं कि वह आगे बढ़ने के लिए तैयार है या नहीं। जब वे उसे जाने देते हैं तब नूतन तथा उच्चतर अनुभूतियों की बाढ़ आती है, भागवत शक्तियों के प्रति साधक बढ़ता है, प्रगति-पथ पर चलता जाता है, तब देवतागण तथा उनकी शक्तियाँ साथ चलती हैं, प्रकृति का रूपान्तर उच्चतर चेतना में हो जाता है। अपने अन्तर्दर्शन में तुमने इन्हीं शक्तियों को देखा।

CWSA खण्ड ३०, पृ. १५५

शिव का उपहार

मैं उन दिनों को याद कर रही हूँ जब श्रीअरविन्द सशरीर थे और मैं, ध्यान-कक्ष में सम्मिलित साधकों को, ध्यान करवाने नीचे उतरा करती थी। वहाँ खम्भों के कगारों पर सभी देवी-देवता आसीन होते थे—शिव, कृष्ण, लक्ष्मी, त्रिमूर्ति, सभी—छोटे, बड़े सभी—नियमित रूप से रोज़ाना इन ध्यानों में आया करते थे। बड़ा सुन्दर दृश्य होता था वह। लेकिन इनके अन्दर परम पुरुष के लिए उस तरह की आराधना की भावना नहीं होती थी। इनके लिए वह भावना कोई मायने ही नहीं रखती थी, क्योंकि प्रत्येक, अपनी सत्ता में, अपनी शाश्वत दिव्यता के बारे में पूरी तरह से अभिज्ञ था; और प्रत्येक जानता था कि वह अन्य सभी देवताओं का प्रतिनिधित्व कर सकता है (प्रचलित पूजा-पाठ का आधार तो यही है, और वे सब इसे अच्छी तरह जानते थे)। वे अनुभव करते थे मानों वे सभी देवी-देवता एक समुदाय हैं, लेकिन उनमें ऐसा कोई गुण नहीं था जो चैत्य जीवन प्रदान करता है : कोई गभीर प्रेम नहीं, कोई गभीर सहानुभूति नहीं, ऐक्य का कोई भाव नहीं। उनके अन्दर बस अपनी दिव्यता का ज्ञान था। उनमें प्रत्येक की अपनी विशिष्ट गतियाँ थीं, लेकिन परम पुरुष के प्रति आराध्य-भाव या उनका यन्त्र बनने की कोई भावना नहीं थी : वे अनुभव करते थे कि वे ही

परम पुरुष के द्योतक हैं, अतः उनमें से प्रत्येक अपने विशेष प्रतिनिधित्व के साथ पूरी तरह से सन्तुष्ट था।

२ अगस्त १९६१ एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

रूपान्तर के तीन उपाय

मैं अधिकाधिक स्पष्ट तौर पर देख रही हूँ कि रूपान्तर की इस समस्या के लिए तीन उपाय हैं, आगे बढ़ने के तीन रास्ते हैं और पूर्ण होने के लिए तीनों को मिलाना चाहिये।

पहला, स्वाभाविक रूप से सबसे महत्त्वपूर्ण मार्ग वह है जिसे हम "आध्यात्मिक" कह सकते हैं, जो 'चेतना' के साथ सम्पर्क का है—'प्रेम'-'चेतना'-'शक्ति', हाँ, यही; ये ही हैं तीन रूप : परम 'प्रेम'-'चेतना'-'शक्ति', और उनके साथ सम्पर्क, तादात्म्य : अर्थात्, सभी भौतिक कोषाणुओं को उस 'तत्' को ग्रहण करने-योग्य, 'उसे' अभिव्यक्त करने योग्य—'वह' *बन जाने*-योग्य "बनाना"।

सभी साधनों में यह सबसे ज़्यादा सशक्त और सबसे ज़्यादा अनिवार्य है।

एक गुह्य मार्ग है जो सभी मध्यवर्ती लोकों का हस्तक्षेप लाता है। इसमें सभी शक्तियों और सभी विभूतियों और सभी मध्यवर्ती क्षेत्रों का विस्तृत ज्ञान होता है और वह (मार्ग) इन सबका उपयोग करता है। वहाँ व्यक्ति अधिमानस के देवों का उपयोग करता है। यह दूसरा मार्ग है। शिव, कृष्ण, श्रीमाँ के सभी रूप इस दूसरे मार्ग के अंश हैं।

और फिर, उच्चतर बुद्धि का मार्ग है। यह वैज्ञानिक भाव से परे के भाव का प्रक्षेपण है। यह समस्या को नीचे से पकड़ता है। इसका भी महत्त्व है। विस्तृत व्यवहार की दृष्टि से यह मार्ग अनुमानों को कम कर देता है और ज़्यादा प्रत्यक्ष तथा ज़्यादा यथार्थ क्रिया लाता है।

अगर तीनों को मिलाया जा सके तो स्पष्ट है कि चीज़ ज़्यादा तेज़ चलेगी। पहले के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है, बल्कि पहले के बिना बाक़ी दोनों भ्रामक होते हैं : वे कहीं नहीं पहुँचाते, तुम अनिश्चित काल तक गोल-गोल घूमते रहते हो। लेकिन अगर तुम पहले को दूसरे दोनों से लैस कर दो तो मेरा ख़याल है कि क्रिया बहुत अधिक यथार्थ, अधिक सीधी और अधिक तेज़ हो जाती है। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ११, पृ. ६२

शिव तथा बुद्ध

माताजी, बुद्ध के बारे में मेरा एक प्रश्न है। आपने कहा था कि अवतार पृथ्वी पर यह दिखाने आता है कि भगवान् पृथ्वी पर रह सकते हैं। फिर उन्होंने ठीक इससे विपरीत उपदेश क्यों दिया? वे अवतार हैं या नहीं?

यह!... कुछ लोग कहते हैं कि वे अवतार थे, कुछ और कहते हैं कि नहीं थे, लेकिन यह, सच बात तो यह है कि...

मेरा ख़याल है कि यह पहली चीज़, कि अवतार पृथ्वी पर यह सिद्ध करने आता है कि भगवान् है... इसे इतना शब्दों के द्वारा नहीं जितना कि अमुक सिद्धि से प्रमाणित करना होता है; और मेरा ख़याल है, भगवान् का यह पहलू परिवर्तनकारी और विनाशक न होकर सचमुच रचनात्मक और संरक्षक होता है। अगर हम भारतीय नामों का उपयोग करें, जिन्हें भारत में सब जानते हैं, तो मेरा ख़याल है कि अधिकतर विष्णु के अवतार यह सिद्ध करने आते हैं कि भगवान् पृथ्वी पर आ सकते हैं; जब कि जब-जब शिव का आविर्भाव हुआ वे हमेशा उन सत्ताओं में प्रकट हुए जिन्होंने किसी भ्रम के विरुद्ध लड़ने और उसे नष्ट करने की कोशिश की।

मेरे पास यह सोचने के लिए कारण हैं कि बुद्ध इनमें से एक थे। ठीक-ठीक कहें तो उन्होंने शिव की शक्ति के किसी तत्त्व को प्रकट किया: यह वही अनुकम्पा थी, समस्त दुःखों की वही सहानुभूतिपूर्ण समझ थी, और वही शक्ति थी जो नष्ट करती है—स्पष्ट है कि रूपान्तर करने के अभिप्राय से, लेकिन निर्माण करने की जगह वह नाश करती है। उनका कार्य अधिक निर्माणशील प्रतीत नहीं होता। व्यावहारिक रूप से मनुष्यों को यह सिखाना बहुत आवश्यक था कि वे स्वार्थी न हों; उस दृष्टिकोण से यह बहुत आवश्यक था। लेकिन गम्भीरता से देखें तो उस (कार्य) ने पृथ्वी के रूपान्तरण में बहुत सहायता नहीं की है। जैसा कि मैंने कहा, पार्थिव जीवन में उच्चतर 'चेतना' के अवतरण में सहायता देने के बदले उनकी शिक्षा ने गभीर चेतना को बाहरी अभिव्यक्ति से अलग करने को बहुत ज़ोर देकर प्रोत्साहित किया। उनका कहना था कि यह चेतना ही एकमात्र सत्य है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३२५-२६

देवी-देवता स्वतन्त्र हैं

तो, देख रहे हो न, ये सभी देवी-देवता अपनी शक्तियों के साथ स्वतन्त्र हैं और अपनी मर्ज़ी के मुताबिक काम करने के लिए स्वतन्त्र हैं।

जब मैं दूसरे मकान में रह रही थी *(आश्रम के इस मुख्य भवन में नहीं)*, मैं शिव से बहुत आकृष्ट थी। मैंने उनसे धरती पर प्रकट होने के लिए कहा। उन्होंने कहा, 'नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगा। मैं धरा पर केवल तभी अवतरित होऊँगा जब वहाँ अतिमानसिक जाति रहने लगेगी।'

तो मेरे पास कहने को कुछ नहीं रहा। वे स्वतन्त्र हैं। धरती पर मेरे जन्म के साथ-साथ ये सभी देवी-देवता निरन्तर मेरे साथ बने हुए हैं। उन दिनों जब मैं बरामदे में टहला करती थी, कृष्ण मेरे साथ टहलते थे।

मैं जानती हूँ कि ये सभी देवी-देवता 'नयी सृष्टि' में, 'अतिमानस की नूतन सृष्टि' में मानवजाति की सहायता करेंगे...

'Mother You Said So' २५ फ़रवरी १९६६

वैयक्तिक तथा निर्वैयक्तिक

वैश्व स्तर पर भी हम निरन्तर इन दोनों पक्षों में भगवान् के पास पहुँच रहे हैं। पहला है, हम इस तरह विचार एवं अनुभव कर सकते तथा कह सकते हैं कि ईश्वर सत्य, न्याय, पवित्रता, बल, प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य हैं; दूसरा है, हम उन्हें विश्व-शक्ति या विश्व-चेतना के रूप में भी देख सकते हैं। परन्तु यह तो केवल अनुभव का अमूर्त तरीक़ा है। जैसे हम स्वयं कुछ एक गुण या शक्तियाँ या मनोवैज्ञानिक राशिमात्र नहीं हैं, बल्कि एक पुरुष या व्यक्ति हैं जो अपनी प्रकृति को इस प्रकार प्रकट करता है, वैसे ही भगवान् भी एक व्यक्ति, चिन्मय पुरुष हैं जो अपनी प्रकृति को हमारे सामने इस प्रकार प्रकट करते हैं। इस प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों द्वारा, सत्यस्वरूप ईश्वर, प्रेम एवं दयामय ईश्वर, शान्ति एवं पवित्रता के आगार ईश्वर—इन सब रूपों द्वारा हम उनकी उपासना कर सकते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष है कि दिव्य प्रकृति में और भी चीज़ें हैं जो हमने व्यक्तित्व के उस रूप के बाहर रख छोड़ी हैं जिसमें हम इस प्रकार उनकी पूजा कर रहे हैं। अविचल आध्यात्मिक दृष्टि और अनुभूति के साहस से सम्पन्न मनुष्य अधिक कठोर या भीषण रूपों में भी उनका साक्षात्कार कर सकता है। इनमें से कोई भी सम्पूर्ण देवत्व

नहीं है; फिर भी उनके व्यक्तित्व के ये रूप उनके वास्तविक सत्य हैं जिनमें वे हमसे मिलते तथा व्यवहार करते प्रतीत होते हैं, मानों शेष सब उन्होंने अपने पीछे कहीं रख छोड़े हों। वे पृथक्-पृथक् हर एक रूप हैं और एक साथ सब कुछ हैं। वे विष्णु, कृष्ण, काली हैं; वे अपने-आपको ईसा के व्यक्तित्व या बुद्ध के व्यक्तित्व के मानवी रूप में हमारे सामने प्रकाशित करते हैं। जब हम अपनी प्राथमिक, एकांगी रूप से केन्द्रित दृष्टि के परे देखते हैं तो हम विष्णु के पीछे शिव का सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा शिव के पीछे विष्णु का सम्पूर्ण व्यक्तित्व देखते हैं। वे अनन्तगुण हैं तथा अनन्त दिव्य व्यक्तित्व हैं जो स्वयं को इनके द्वारा प्रकट करता है। और फिर, ऐसा प्रतीत होता है कि वे शुद्ध आध्यात्मिक निर्गुणता में या निर्गुण आत्मा के विचारमात्र से भी परे लौट जाते हैं और आध्यात्मीकृत निरीश्वरवाद या अज्ञेयवाद का समर्थन करते हैं; वे मनुष्य के मन के लिए अनिर्देश्य बन जाते हैं। परन्तु इस अज्ञेय में से चिन्मय पुरुष, दिव्य व्यक्ति, जिसने अपने-आपको यहाँ प्रकट किया है, फिर भी पुकार कर कहता है, "यह भी मैं हूँ; मन के विचार से परे यहाँ भी मैं वही हूँ, पुरुषोत्तम रूप में वही हूँ।"
CWSA खण्ड २४, पृ. ५८५-८६

इष्ट देवता

बड़ी ईमानदारी के साथ 'क्ष' के मन में कृष्ण और शक्ति तथा शिव के बीच जो घमासान ऊहापोह चल रहा है, उसे देख मैं मुस्कुराये बिना नहीं रह पा रहा। अगर कोई मनुष्य भगवान् के किसी एक रूप या दो रूपों से आकर्षित हो तो बात समझ में आती है—लेकिन अगर वह एक साथ कई रूपों के प्रति आकृष्ट हो तो इस बात पर उसे अपने-आपको सताने की कोई आवश्यकता नहीं। कुछ विकसित मनुष्यों की प्रकृति में स्वाभाविक रूप से कई पहलू होंगे और यह एकदम से सहज बात है कि उस व्यक्ति के स्वभाव के अलग-अलग पक्ष उसके अन्दर के अलग-अलग व्यक्तित्व से शासित हों और वह कई दिशाओं में खिंचा चला जाये—वह उन सबको आराम से स्वीकार कर सकता है और उनको एकमेव भगवान् तथा उन अन्यथा आद्या शक्ति के साथ समस्वर कर सकता है जिनकी हम सभी अभिव्यक्तियाँ हैं।

शिव 'तपस्' के प्रभु हैं। उनकी शक्ति तपस्-शक्ति है।

कृष्ण 'आनन्द', 'प्रेम' तथा 'भक्ति' के प्रभु, उसके देवत्व हैं; अवतार-रूप में वे ज्ञान तथा कर्मों के एकत्व को अभिव्यक्त करते हैं और इस एकत्व द्वारा पार्थिव क्रमविकास को भागवत 'आनन्द', 'प्रेम' तथा 'भक्ति' के साथ जोड़ते हैं।

देवी भगवती शक्ति हैं—भगवान् की 'चेतना' तथा 'शक्ति', समस्त लोकों की 'जननी' तथा 'ऊर्जा'। सभी शक्तियाँ उन्हीं की हैं। कभी-कभी दैवी-शक्ति का अर्थ हो सकता है, वैश्व 'जगत्-शक्ति'; लेकिन यह 'शक्ति' का मात्र एक पक्ष होता है।

महाकाली तथा काली समान नहीं हैं, काली उनका लघु रूप हैं। उच्चतर स्तरों पर महाकाली सामान्यतया स्वर्णिम आभा में प्रकट होती हैं।
CWSA खण्ड २८, पृ. ४५९-६०

भारतीय परम्परा के वैदिकोत्तर देवता

ब्रह्मा, विष्णु, शिव—ये एकमेव ब्रह्माण्डीय देवत्व की तीन शक्तियाँ और व्यक्तित्व हैं।

ब्रह्मा उन भगवान् की शक्ति हैं जो आकारों तथा सर्जन के पीछे स्थित हैं।

रही बात सर्जनकारी विष्णु की, तीनों ही देवताओं को बहुधा विश्व के सर्जक के रूप में दर्शाया जाता है—यहाँ तक कि शिव को भी—जिन्हें पारम्परिक रूप से संहारकर्ता जाना जाता है।

शिव तथा अधिमानस के बीच कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है—अधिमानस सभी देवताओं का उच्चतर स्थान है।

महाशिव का अर्थ है—सामान्यतया जिन्हें हम शिव के रूप में पूजते हैं उनकी उच्चतर अभिव्यक्ति—महानतर भागवत शक्ति को अभिव्यक्त करने वाली 'शक्ति' का सर्जनात्मक नृत्य।
CWSA खण्ड २८, पृ. ४५९

भगवान् के अवतार तथा विभूतियाँ

देवताओं के अन्दर वह दिव्य चिनगारी नहीं होती जो अन्तरात्मा का केन्द्र-बिन्दु है, चूँकि केवल पृथ्वी पर ही—मैं भौतिक जगत् की भी बात

नहीं कह रही—हाँ, तो केवल पृथ्वी पर ही इस प्रेम का अवतरण हुआ जो जड़तत्त्व के केन्द्र में स्थित 'भागवत उपस्थिति' का मूल स्रोत था। और स्वभावतया, चूँकि उनके अन्दर कोई चैत्य सत्ता नहीं है, वे चैत्य सत्ता को पहचानते भी नहीं। इनमें से कुछ ऐसी सत्ताएँ भी हैं जिन्होंने भौतिक शरीर इसलिए धारण करना चाहा कि वे चैत्य सत्ता का अनुभव प्राप्त कर सकें —पर ऐसी सत्ताएँ बहुत नहीं हैं।

सामान्यतया, उन्होंने यह आंशिक रूप में एक "विभूति" के द्वारा ही किया है, पूरे का पूरा अवतार लेकर नहीं। उदाहरणार्थ, कहा जाता है कि विवेकानन्द शिव की एक विभूति थे। किन्तु स्वयं शिव ने स्पष्ट रूप में यह इच्छा व्यक्त की थी कि वे अतिमानसिक जगत् के साथ ही पृथ्वी पर जन्म लेंगे। जब पृथ्वी अतिमानसिक जीवन के लिए तैयार हो जायेगी, वे आयेंगे। प्रायः ये सभी सत्ताएँ तभी प्रकट होंगी—वे उस क्षण की प्रतीक्षा कर रही हैं। वे आज के संघर्ष और अन्धकार का कुछ भी नहीं चाहतीं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. २३८-३९

सभी चीज़ों का पुनर्जन्म हो रहा है

एक होता है युगधर्म; यानी, हम जिस युग में रहते हैं उसके धर्म के अनुसार उचित रूप से क्रिया करना। हर एक धर्म की क्रियाएँ वस्तुतः अलग होती हैं।... जो चीज़ें एक युग में ठीक होती हैं, ज़रूरी नहीं है कि अन्य युग में भी उचित हों। हर युग में प्रभु एक सामाजिक प्रणाली के स्थान पर दूसरी सामाजिक प्रणाली, एक धर्म के स्थान पर दूसरा धर्म, एक सभ्यता के स्थान पर दूसरी सभ्यता को लेकर आते हैं और इस तरह हर युग में वे हमें निरन्तर महान् से महानतर लक्ष्य की ओर बढ़ाये लिये चलते हैं, और इसी तरह मानव वस्तुतः अधिकाधिक पूर्णता की ओर बढ़ता रहता है—भले वह इस तथ्य से सचेतन हो या न हो...।

जब अपनी वैश्व चक्राकार गति में वे जगत्-भर में एक स्थायी सामञ्जस्य स्थापित करते हैं तो वह मनुष्यों का सत्ययुग होता है। जब सामञ्जस्य डगमगाता है, जब उसे कठिनाई से बनाये रखा जाता है, जब वह मनुष्यों की स्वभावगत गति नहीं रहता बल्कि एक तरह से उसे उन पर लादा जाता है तब त्रेतायुग होता है। जब डगमगाहट रह-रह कर ठोकरें खाने लगती है और सामञ्जस्य

को पग-पग पर बहुत ही सावधानी तथा कठिनाई के साथ बनाये रखने की भरसक कोशिश की जाती है तब द्वापरयुग होता है। जब विघटन होता है और सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो खण्डहर का रूप ले लेता है, जब विभीषिका मुँह बाये खड़ी प्रतीत होती है तब कलियुग होता है। समस्त जीवन को प्रगति के इसी स्वाभाविक चक्र में से गुज़रना होता है।

हम कह सकते हैं कि सभी मानव धर्मों, समाजों तथा संस्कृतियों के ये चार युग होते हैं। सच कहें तो यह चक्राकार गति न केवल एकदम स्वाभाविक होती है, बल्कि साथ ही हितकारी भी होती है। यह न निराशावादी का औचित्य है न किसी दुःखद शून्य अथवा मूक-बधिर भाग्य के जाल में खो जाना ही है। यानी, यह कहना कि हम चीज़ों से आसक्त क्यों रहें अगर इनका अन्त एक दुःखद प्रलय में ही हो, हमारी जाति की समस्त उन्नति, समस्त उपलब्धियाँ अगर अन्तिम युग में आकर एकदम से धराशायी हो जायें तो उन उपलब्धियों का भला क्या मूल्य?—यह निराशावादी की दृष्टि है। प्रत्येक कलियुग के अन्दर एक सत्ययुग छिपा रहता है और यह भी सत्य है कि प्रत्येक कलि अन्दर ही अन्दर सत्य को तैयार करता रहता है। नये सृजन के लिए पुराने का विध्वंस ज़रूरी है; और जब नये सामञ्जस्य को पूर्ण बना लिया जायेगा तो वह पुराने तथाकथित पूर्ण सामञ्जस्य से कहीं अधिक महान् होगा। लेकिन कलियुग में हम कमज़ोर पड़ जाते हैं और तब हमारी अर्ध-सफलताएँ असफलताओं में बदल जाती हैं, हम और अधिक हताश हो उठते हैं; तब हमारी ऊर्जा, हमारी श्रद्धा पर घनघोर बादल घिर आते हैं, तब जगत् में युद्ध, कलह, अशान्ति, तनाव फेरे देने लगते हैं और हम कभी थोड़ा-सा सृजन करते हैं तो कभी पीछे ही पीछे घिसटते चले जाते हैं। तब मनुष्य हाहाकार कर उठता है कि लो, हमारी सारी उपलब्धियाँ हमारे हाथों से पानी की तरह फिसलती चली जा रही हैं। लेकिन अगर तब वे 'भागवत प्रेम' और 'प्रज्ञा' पर भरोसा रख सकें, अपनी दकियानूसी और सँकरी धारणाओं के बन्धन से छूट सकें तो हाहाकार करने की बजाय ख़ुशी से चिल्ला उठेंगे कि *सभी चीज़ों का पुनर्जन्म हो रहा है।*
CWSA खण्ड १२, पृ. ५४-५५

परम रहस्य है वही चाहना जो भगवान् चाहते हैं। —श्रीमाँ

दैनन्दिनी

दिसम्बर

१. हमें भगवान् के सम्मुख हमेशा बिलकुल कोरे काग़ज़ की तरह रहना चाहिये ताकि हमारे अन्दर भगवान् की इच्छा बिना किसी कठिनाई और बिना किसी मिश्रण के लिखी जा सके।

२. एक बार व्यक्तित्व बन जाने पर अपने-आपको देने में, समर्पण करने में, फिर से कितने प्रयासों और संघर्षों की ज़रूरत होती है!

३. सच्चा समर्पण तुम्हें बड़ा बनाता है, तुम्हारी क्षमता बढ़ाता है, वह तुम्हें मात्रा और गुण में अधिक बड़ा परिमाण देता है जिसे तुम अपने-आप न पा सकते।

४. आओ हम उसी तरह कर्म करें जैसे हम प्रार्थना करते हैं, क्योंकि सचमुच कर्म भगवान् को निवेदित शरीर की उत्तम प्रार्थना है।

५. हमारी अपनी पूर्णता के साथ, हमारे अन्दर औरों के प्रति उदार समझ विकसित होती है।

६. तुम औरों की मनोभावनाओं और सनकों का अपने ऊपर असर नहीं पड़ने देते—यह बात बिलकुल ठीक है। तुम्हें इस सबसे ऊपर उठ कर भगवान् की सतत उपस्थिति, प्रेम और सुरक्षा का अनुभव करना चाहिये।

७. भगवान् की सेवा करने का सबसे अच्छा तरीक़ा यही है कि तुम जो कुछ करो उसे पूरी सच्चाई के साथ करो, जितनी पूर्णता के साथ कर सकते हो करो।

८. अगर तुम सचमुच भगवान् से प्रेम करते हो तो इसे चुपचाप और शान्त रह कर प्रमाणित करो। हर एक के जीवन में जो कुछ आता है वह भगवान् की ओर से हमें कुछ पाठ सिखाने के लिए आता है। और अगर हम उसे ठीक भावना से लें तो तेज़ी से प्रगति कर सकते हैं। ऐसा करने की कोशिश करो।

९. निश्चय ही, अचञ्चलता तमस् नहीं है। वस्तुतः उचित वस्तु अचञ्चलता में ही की जा सकती है। मैं जिसे अचञ्चलता कहती हूँ वह है, किसी

भी चीज़ से क्षुब्ध हुए बिना काम करना और किसी भी चीज़ से क्षुब्ध हुए बिना हर चीज़ का अवलोकन करना।

१०. कठिनाइयाँ इसलिए आती हैं कि तुम्हारे अन्दर सम्भावनाएँ हैं। अगर जीवन में सब कुछ आसान होता तो जीवन शून्य होता। चूँकि तुम्हारे रास्ते में कठिनाइयाँ आती हैं तो इससे पता चलता है कि तुम्हारे अन्दर सम्भावनाएँ हैं। डरो मत।

११. किसी कठिनाई के कारण बेचैन या निरुत्साहित मत होओ, बल्कि चुपचाप और सरल भाव से अपने-आपको माँ की शक्ति की ओर खोले रखो और उसे अपने अन्दर परिवर्तन ले आने दो।

१२. जब तुम पूरी तरह से अचञ्चल और भयहीन होते हो तो कोई चिन्ताजनक चीज़ नहीं हो सकती।

१३. जब तुम लोगों से बोलो तो सावधान होकर हमेशा अपने चारों ओर जीवन्त चरम उपस्थिति तथा सुरक्षा को बनाये रखो और कम-से-कम बोलो।

१४. जब तुम सचमुच बदल जाओगे तब तुम्हारे चारों तरफ़ की चीज़ें भी बदल जायेंगी।

१५. अन्ततः, छोटी-मोटी सतही चीज़ों का कोई महत्त्व नहीं रहता अगर इनकी तुलना उस लक्ष्य से की जाये जिसे धरती पर चरितार्थ करना है।

१६. अगर चीज़ें वैसी नहीं हैं जैसी होनी चाहियें तो चिन्ता उन्हें अधिक अच्छा बनाने में सहायता नहीं करती।

अचञ्चल विश्वास बल का स्रोत है।

१७. सामान्य रूप से कहें तो मनष्य ऐसा पशु है जो अपने-आपको अतिशय गम्भीरता के साथ लेता है। सभी परिस्थितियों में अपने ऊपर मुस्कुराना जानना, अपने दुःखों और मोह-भंगों, महत्त्वाकांक्षाओं और पीड़ाओं, क्रोध और विद्रोह पर मुस्कुराना—यह स्वयं अपने-आप पर विजय पाने के लिए कितना शक्तिशाली अस्त्र है!

१८. सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि भागवत कृपा को अपने अन्दर कार्य करने दिया जाये, इसका कभी प्रतिरोध न किया जाये, इसके प्रति कभी कृतघ्न न हुआ जाये, कभी इससे मुँह न मोड़ा जाये—बल्कि

हमेशा ही लक्ष्य प्राप्त होने तक प्रकाश, शान्ति, एकता और आनन्द का अनुसरण किया जाये।

१९. साहसी बनो और अपने विषय में इतना अधिक मत सोचो। तुम अपनी तल्लीनता का केन्द्र अपने तुच्छ अहं को बनाते हो इसीलिए तुम दुःखी और असन्तुष्ट हो। अपने-आपको भूलना ही इस तरह के सभी रोगों की महान् औषधि है।

२०. तुम्हें कभी डरना नहीं चाहिये। नींद में भी तुम्हें मेरी स्मृति बनाये रखने में समर्थ होना चाहिये और यदि ख़तरा आ जाये तो सहायता के लिए मुझे पुकारना चाहिये। तब तुम देखोगे कि दुःस्वप्न विलीन हो रहे हैं।

२१. सरल और शान्त हृदय और स्थिर मन के साथ अपना काम जारी रखो। अभीप्सा आवश्यकता के अनुसार धीरे-धीरे आयेगी।

२२. ठीक उस समय जब तुम निर्दोष हो तो तुम्हें दुर्व्यवहार के बारे में एकदम उदासीन होना चाहिये क्योंकि तब तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज़ नहीं होती जिसके लिए तुम अपने-आपको दोष दो और अपने-आपको दिलासा देने के लिए तुम्हारे पास अपने अन्तःकरण की स्वीकृति होती है।

२३. मेरे बच्चे, मैं तुम्हारे हृदय में हूँ ताकि वह ख़ुश रहे, तुम्हारे सिर में हूँ ताकि वह शान्तिपूर्ण रहे और तुम्हारे हाथों में हूँ ताकि उनमें कौशल आये।

२४. मेरे प्रिय बालक, इस आनन्द को, इस विश्राम को, विजय के इस आश्वासन को सावधानी से बनाये रखो। ये दुनिया-भर की समस्त धन-सम्पदा से अधिक मूल्यवान् हैं और ये तुम्हें मेरे बहुत नज़दीक रखेंगी।

२५. शान्ति तुम्हारे ऊपर है; उसे अपने अन्दर प्रवेश करने दो और शान्ति में तुम प्रकाश पाओगे और प्रकाश तुम्हारे लिए ज्ञान लायेगा।

२६. चिन्ता न करो, बस अपने अन्दर सदा चीज़ों को अच्छी तरह करने का संकल्प बनाये रखो।

२७. रास्ता खुला हुआ है मेरे बालक! मैं भुजाएँ फैलाये हुए प्रेम के साथ तुम्हें उनमें बाँध लेने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूँ—अपने प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२८. तुम अभी तक उसी पुराने ढर्रे पर हो जो आध्यात्मिकता को जीवन से अलग करता है। जब कि श्रीअरविन्द ने घोषित किया है, "समस्त जीवन योग है" और उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि तुम्हें **जीवन में ही** योग करना चाहिये।

२९. तुम जो सुख पाते हो उसकी अपेक्षा तुम जो सुख देते हो वह तुम्हें ज़्यादा सुखी बनाता है।

३०. यदि तुम संसार को बदलना चाहते हो तो अपने-आपको बदलो। तुम्हारा आन्तरिक रूपान्तर इस बात का प्रयास हो कि सत्य-चेतना भौतिक जगत् पर अधिकार कर सकती है और दिव्य एकता पृथ्वी पर अभिव्यक्त हो सकती है।

चाहे जितने विशाल और जटिल संगठन क्यों न हों, वे तब तक कोई स्थायी चीज़ नहीं प्राप्त कर सकते जब तक कि एक नयी, अधिक दिव्य और अधिक शक्तिशाली शक्ति अपने-आपको पूर्ण मानव-यन्त्र के द्वारा प्रकट नहीं करती।

३१. मैं आशा करती हूँ कि नया साल तुम्हारी अन्तरात्मा के पुनर्जागरण को और तुम्हारी चेतना में प्रगति के संकल्प के जागरण को देखेगा।

निश्चय ही, पार्थिव चेतना के लिए स्वयं यह तथ्य ही कि भगवान् प्रकट होते हैं, एक महान् से महान् घटना है। ज़रा यहाँ पृथ्वी पर के अन्धकार की ओर तो देखो और यह विचार करो कि यदि भगवान् सीधे हस्तक्षेप न करते और ज्योतियों की ज्योति अन्धकार में से न फूट निकलती—क्योंकि भागवत अभिव्यक्ति का यही अर्थ है—तो क्या अवस्था होती!

*

अवतार उस समय आवश्यक होता है जब कोई विशेष कार्य करना होता है और विकासक्रम में संकट-काल उपस्थित होते हैं। अवतार एक विशिष्ट अभिव्यक्ति होता है, जब कि बाक़ी समय भगवान् साधारण मनुष्य की सीमाओं के अधीन विभूति के रूप में कार्य करते हैं।

श्रीअरविन्द

शान्ति, नियति तथा योग

अगर तुम सचमुच भविष्य को देखना और घटनाओं को प्रभावित करना चाहते हो तो तुमको उच्चतर चेतना में उठना चाहिये जहाँ से तुम हर चीज़ को देख सको और चीज़ों को बदल सको। वाञ्छित परिणाम लाने के लिए दो शक्तियाँ सबसे अधिक ज़रूरी हैं। एक है इच्छा-शक्ति, प्रार्थना और अभीप्सा—मैं तीनों को एक साथ रख रहा हूँ और दूसरी चीज़ है गुह्य ज्ञान। जब हमारे पूर्वज कहते थे कि इस चीज़ के लिए लक्ष्मी की पूजा करो, उसके लिए शिव की आराधना करो तो यह उनकी भूल न होती थी। वस्तुतः गुह्य ज्ञान हमें यही सिखाता है। अगर तुम अपनी चेतना को परम प्रभु के साथ मिला सको तो यह सबसे ऊँची और सबसे अच्छी चीज़ होगी, परन्तु यह एकता अन्य दैवी शक्तियों के आह्वान का बहिष्कार नहीं करती जिन्हें परम प्रभु अभिव्यक्त करते हैं। तो तुम अपनी चेतना को दोनों के साथ मिला सकते हो और जब तुम दोनों स्तरों पर मिल जाओ तो तुमको यह अनुभव होगा कि स्वयं तुम कुछ नहीं कर रहे बल्कि चीज़ें घटित हो रही हैं। उदाहरण के लिए, अगर शक्ति को किसी के पास जाना है तो वह चली जाती है, अगर किसी से कुछ कहना है तो वह कहा जाता है, अगर किसी चीज़ को बदलना है तो वह बदल जाती है। तुम्हारा एक भाग साक्षी होता है और दूसरा भाग परिवर्तन या घटना में भाग लेता है। इस तरह तुम पूर्ण जीवन बिता सकते हो। और पूर्ण जीवन बिताने के लिए तुमको अपनी चेतना को गहरा और वैश्व बनाना होगा और इसे सचेतन रूप से भौतिक व्यक्तित्व द्वारा अभिव्यक्त करना होगा। भगवान् या भगवान् के साथ होने की अभीप्सा और गुह्य ज्ञान दोनों ज़रूरी हैं अगर तुम अपने जीवन की घटनाओं के स्वामी बनना चाहो या वैश्व घटनाओं पर अधिकार करना चाहो। मैं तुम लोगों को माताजी के जीवन की एक घटना सुनाता हूँ जिससे तुमको पता लगेगा कि गुह्य ज्ञान कैसे काम करता है।

पहले महायुद्ध के बाद जापान में कोई महामारी फैल गयी थी। लोगों को बुख़ार हो जाता था और वे मर जाते थे। डॉक्टर भरसक प्रयास करते थे

पर कोई फ़ायदा न होता था। उन दिनों माताजी जापान में थीं। वे टोकियो से तीस मील की दूरी पर किसी मित्र से मिलने गयीं। वे कुछ ही देर उसके साथ रही होंगी पर उसके यहाँ से लौटने पर उन्हें भी बुख़ार हो गया। डॉक्टर उनकी देखभाल तो कर रहे थे पर उन्होंने दवाई खाने से इनकार कर दिया। तीन दिनों तक उन्हें तेज़ बुख़ार रहा पर वे बिस्तर पर ही लेटी रहीं, बस भागवत चेतना के साथ युक्त रहीं। तीसरे या चौथे दिन उन्होंने सैनिक वेश में एक सत्ता को देखा जिसका आधा सिर था, वह उनके पास आ रहा था। जब वह नज़दीक आया तो उन्होंने उसे पकड़ लिया और दोनों में बड़ा संघर्ष हुआ। पर माताजी उसे भगाने में सफल हो गयीं। उस दिन से जापान में लोग स्वस्थ होने लगे। बहुत दिनों के बाद जब माताजी हमें यह घटना सुना रही थीं तो उन्होंने समझाया कि आधे सिर का वह व्यक्ति उन सत्ताओं में से एक था जो युद्ध में मारे गये थे, लेकिन उसे गति नहीं मिली थी ,यानी वह मृत्यु के परे नहीं जा पाया था।

मैं कहना यह चाहता हूँ कि हम बहुत-सी नियतियों की पकड़ में होते हैं। भौतिक स्तर पर तुम्हारी नियति कुछ हद तक तुम्हारे माता-पिता पर और कुछ हद तक तुम्हारे परिवेश और स्वयं तुम पर निर्भर होती है। प्राण की नियति भी कुछ हद तक माता-पिता पर, लेकिन ज़्यादातर तुम्हारे परिवेश और उससे भी अधिक स्वयं तुम पर निर्भर होती है। मन की नियति माता-पिता और परिवेश पर बहुत कम निर्भर होती है, वह बहुत अधिक निर्भर होती है स्वयं तुम पर। तुम जैसे-जैसे ऊपर उठते जाते हो नियति तुम पर अधिक और वातावरण तथा परिस्थितियों पर कम निर्भर होती है। जब तुम उच्चतम स्तर पर जा पहुँचते हो तो कह सकते हो कि यह मेरी सच्ची नियति है—जो तुम्हारी आत्मा पर, भगवान् पर निर्भर होती है।

अब मैं सबसे मज़ेदार बात पर आता हूँ। अगर पूर्ण जीवन बिताना हो तो भूलों से कैसे बचा जाये। बहुत समय पहले मैं माताजी के आदेश के अनुसार एक भारतीय योगी से प्रशिक्षण पा रहा था। मैं उसके गाँव में रहने के लिए गया। उसने मुझे एक छोटे-से मकान में रखा जहाँ दरवाज़े बहुत छोटे थे। वह एक पुराने ढंग का झोंपड़ा था जिसका शौचघर बाहर खुले में था। कमरे अँधेरे थे और सामने बरामदा था। मुझे सारे समय चेतना की एक विशेष अवस्था में रहना होता था। यदि किसी भूल से या

किसी कारण या आदत से मैं निश्चित चेतना में न होता तो मेरा सिर ज़रूर दरवाज़े से टकरा जाता था या और कहीं चोट लग जाती थी। मैंने सोचा, दिव्य गुरु इस अनुभव के द्वारा मुझे सारे समय सिखला रहे हैं। तो अपने ऊपर नज़र रखने के लिए और किसी की ज़रूरत नहीं, वे सारे समय हमारे ऊपर नज़र रखते और रास्ता दिखलाते हैं।

जब हम योग करना शुरू करते हैं तो जीवन की घटनाएँ कुछ और ही अर्थ लेने लगती हैं। अगर हम कोई भूल करें तो हम पर औरों की अपेक्षा ज़्यादा कड़ी चोट पड़ेगी। यह इस बात का चिह्न है कि भागवत कृपा ने हमें स्वीकार कर लिया है। प्रहार का मतलब यह नहीं होता कि भागवत कृपा ने हमको छोड़ दिया है बल्कि इसका मतलब यह होता है कि भगवान् ने हमारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। तो अगर हम अपने जीवन और घटनाओं के स्वामी बनना चाहते हैं, यदि हम सदा सर्वोत्तम विधि से काम करना चाहते हैं तो पहली शर्त होगी, भगवान् के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का भाव और यह सतत अभीप्सा कि वे हमारे द्वारा काम करें।

दूसरी चीज़ है निष्काम भावना, जो बहुत ज़रूरी है। हम अपने दिन की योजना बनाते हैं। मान लो कि तुम किसी कार्यालय में काम कर रहे हो। तुम्हें दस बजे वहाँ पहुँच जाना चाहिये, तुम्हें यह काम आज ख़तम करना है और वह कल और अगला काम परसों। यह योजना बनाने का अच्छा तरीक़ा है पर है मानसिक। एक और तरीक़ा है जो मानसिक नहीं है। तुम अपनी जेब में एक दैनन्दिनी रखते हो, यदि तुम माताजी की ओर खुले हुए हो तो ठीक समय पर भगवान् तुमको बता देंगे कि इस समय यह काग़ज़ उठाओ, उस समय यह दैनन्दिनी उठाओ। तुम्हारे अन्दर कोई और कामना न होनी चाहिये, बस एक, भगवान् को सदा-सर्वदा याद रखो और उनके सम्पर्क में रहो। तब वे तुम्हारे पास विचार भेजेंगे, वे तुम्हारी दैनन्दिनी में जो लिखना चाहिये वह बतला देंगे। वे तुम्हें समय पर कार्यालय भेज देंगे। और जिन-जिन से मिलवाना है मिलवा देंगे।

(क्रमशः)

—नवजातजी

तेज़ी से करने की अपेक्षा अच्छा करना ज़्यादा अच्छा है।

—श्रीमाँ

'अप्रत्याशित' का मुहूर्त

युग-युगान्तरों में जब भी पृथ्वी पर नयी सृष्टि का, या पृथ्वी के वातावरण में नयी चेतना का आविर्भाव हुआ, हमेशा ही उसमें पुरातन के विलय और विनाश की अवस्था की पूर्ववर्तिता रही। शिव के नाट्य के दो स्वरूप हैं, सृष्टि का आनन्द और साथ ही विनाश का उल्लास—लास्य और ताण्डव—दोनों ही आज तक समान रूप से आवश्यक रहे हैं—एक दूसरे के पूरक।

विनाश का अर्थ है अनावश्यक, अनुपयुक्त, उस सबका विनाश जो नये आगमन को स्वीकार करने से इनकार करता है, उसमें बाधा डालता है, उसके निषेध का प्रयत्न करता है—उस सबका जो अवश्यम्भावी नये भविष्य के साथ सामञ्जस्य में नहीं है। पृथ्वी का विकास प्रगति-क्रम का अभियान है—अगर तुम उसकी गति के साथ-साथ चलने में असफल होते हो तो तुम्हें रास्ते से हटना होगा, बल्कि तुम्हें इसलिए हटा दिया जायेगा ताकि दूसरे आ रहे क़दमों के लिए जगह बनायी जा सके।

अगर तुम उस पुरातन सृष्टि में हो या कम-से-कम उससे प्रेम करते हो, उससे जुड़े हुए हो, तो ध्वंस पीड़ादायक हो जाता है, यहाँ तक कि तुम्हारे लिए वह भयजन्य और ग्लानिजन्य हो जाता है। पर अगर तुम्हारे अन्दर नवीन के लिए अभीप्सा है, पहले ही तुमसे सम्बन्धित उस उदीयमान भविष्य में भाग लेने की आकांक्षा है, तो तुम इस ध्वंस की आवश्यकता को अनुभव करते हो और काम की अविलम्ब पूर्ति के लिए इसका स्वागत करते हो, और यहाँ तक कि इसमें हर्षित होते हो। तुम ध्वंस के उल्लास का आनन्द लेते हो—कम-से-कम शिव तो लेते हैं, दिव्य शक्ति तो लेती है, ऐसा लगता है।

कुछ वैसा ही, वास्तव में यही इस समय घटित हो रहा है। महाकाली ने तैयारी का, बहिष्करण का—विनाश और विलय का—अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है ताकि महालक्ष्मी और महासरस्वती का मार्ग प्रशस्त हो सके। महेश्वरी के अपार प्रेम और करुणा ने इस कार्य को स्वीकृति दी है, इसे समर्थन दिया है। वह नयी सृष्टि, वह नया जगत्, जिसका निर्माण श्रीमाँ ने किया और जिसे वे इतने अधिक प्रेम और सावधानी से अब भी बना रही हैं, तैयार है—प्रकट होने के लिए, भौतिक क्षेत्र में अपने उद्घाटन के लिए तैयार है। वह इस पृथ्वी पर मूर्त रूप लेने की प्रतीक्षा में है, लेकिन पृथ्वी

अभी तैयार नहीं है, बल्कि मनुष्य अभी तैयार नहीं है, वह अब भी इससे इनकार करता है, अब भी अपने पुरातन मृत जगत् को पकड़े हुए है—और बहुत कस कर पकड़े हुए है—वह मिथ्यात्व और धूर्तता के इस खेल से प्रेम करता है। शायद सत्य उसकी अहंकारपूर्ण प्रकृति और दुर्बोध बनावट के लिए इतना द्युतिमान्, इतना अप्रतिरोध्य है—इसलिए वह इनकार करता है, उस नयी चेतना, नयी वास्तविकता में जितना अधिक हो सकता है बाधा पहुँचाता है। श्रीमाँ ने अपने असीम प्रेम के कारण इस इनकार को अपने ऊपर लेने का प्रयत्न किया, अधिक-से-अधिक तत्त्वों को बदलने की, उनमें विश्वास पैदा करने की कोशिश की—फिर, जब इससे अधिक नहीं किया जा सका तो उन्होंने स्वयं को समेट लिया और कार्यक्षेत्र को अपने दूसरे रूप के लिए छोड़ दिया ताकि वह इस अपरिहार्य कार्य को कर सके—पुराने कठोर जगत् को तोड़ने के कार्य को। यह एक आवश्यकता है पृथ्वी के और मनुष्य के भी अन्तिम श्रेयस् के लिए।

कार्य आरम्भ हो चुका है—इसे शिव का नर्तन, ताण्डव कहो या प्रचण्ड माता काली का नर्तन—यह आरम्भ हो चुका है और तीव्र और तीव्रतर गति से अपने मार्ग पर बढ़ रहा है। विनाश, विलय, विघटन—हाँ, यह प्रथम परिणाम है और हम अब इसे प्रत्यक्ष देख रहे हैं और इसमें भाग ले रहे हैं, चाहे हम इसे पसन्द करें अथवा नहीं। यह परम प्रभु का निश्चय है—इसे घटित होना ही है। वे जो सत्य से जुड़े हुए हैं बचे रहेंगे, वे जो मिथ्या के साथ मैत्री करेंगे नष्ट हो जायेंगे—मनुष्य के पास चुनने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है, सचेतन रूप से या अचेतन रूप से।

यह एक अपरिहार्य स्थिति है, जो सत्य के अभीप्सु हैं, उन्हें दुःख या शोक करने की कोई आवश्यकता नहीं।

अगली अवस्था स्वभावतः मलबा साफ़ करने की होगी—एक पूरी सफ़ाई—उस सबका बहिष्करण या विलोपन जो सत्य के विरुद्ध था, मृत जगत् का ध्वंसावशेष, वह क्षेत्र—वहाँ से वह सब कुछ साफ़ किया जायेगा जो गन्दा और मलिन है। क्योंकि केवल तभी नयी वास्तविकता आगे आने में समर्थ होगी, श्रीमाँ का कार्य पूरा होगा।

नयी सृष्टि पहले ही विद्यमान है—अपना रूप ले रही है—इस समय जो कुछ भी आश्रम में और बाहर घट रहा है, वह इसीलिए घट रहा है ताकि

नयी सृष्टि जल्दी-से-जल्दी सम्मुख आ जाये। वे बाहरी ढाँचे को तोड़ रही हैं जिसके अन्दर नयी वास्तविकता स्थापित हो चुकी है, या तुम इसे एक मुर्दा खोल कह सकते हो जिसे तोड़ा जा रहा है ताकि नयी वास्तविकता बाहर आ सके। यह श्रीमाँ का अपने ही 'आत्म' के साथ कार्यव्यापार है। उन्होंने अपना 'छिन्नमस्ता' रूप धारण किया है। जो कुछ भी वे नष्ट कर रही हैं वे उनके अपने ही अंश हैं—वे मानों, अपने ही शरीर के पुराने अनुपयोगी अंगों से पीछा छुड़ा रही हैं। हम श्रीअरविन्द की इन पंक्तियों को स्मरण रख सकते हैं :

"... मुहूर्त कई बार बड़ा भयावह होता है, एक अग्नि और एक चक्रवात और एक तूफ़ान, ईश्वर के कोप के कोल्हू का चलना; पर जो इस घड़ी में अपने प्रयोजन के सत्य पर खड़ा रह सकता है, वह है जो खड़ा रहेगा; अगर वह गिर भी जायेगा, तो पुनः उठ खड़ा होगा; अगर वह हवा के पंखों पर ग़ायब होता लगेगा, तो भी वह लौट आयेगा। दुनियावी बुद्धिमत्ता को अपने कानों के बहुत पास आकर फुसफुसाने मत दो; क्योंकि यह 'अप्रत्याशित' का मुहूर्त है।" ('भागवत मुहूर्त')

—नलिनीकान्त गुप्त

आध्यात्मिक मनुष्य

आध्यात्मिक मनुष्य वह है जिसने आध्यात्मिकता की कोई चीज़ उपलब्ध कर ली है, भले वह विभिन्न पहलुओं में से कोई एक ही क्यों न हो; वह जो इन पहलुओं को पाने की कोशिश करता है वही आध्यात्मिक जिज्ञासु है। बाक़ी सब कुछ—चाहे वह भव्य रूप से बौद्धिक या नैतिक हो, कलात्मक रूप से अत्यधिक सुन्दर और सामञ्जस्यमय हो, प्राणिक रूप से शानदार, महान् तथा बलशाली या शारीरिक रूप से पूर्ण क्यों न हो—वह सब रास्ते में अमूल्य उपलब्धियाँ अवश्य होती हैं, लेकिन अभी तक व्यक्ति ने वह अटल क़दम नहीं उठाया है कि वह मन की सीमा को लाँघ कर एक नये साम्राज्य में पदार्पण कर ले।

CWSA खण्ड २८, पृ. ४२५

शाश्वत ज्योति

(१)

इस अंक से हम आश्रम की वरिष्ठ साधिका चित्रा सेन—हमारी प्रिय चित्रा दी—की डायरी में अंकित श्रीमाँ की बातचीत क्रमशः दे रहे हैं। स्वयं चित्रा दी के शब्दों में सुनिये—

'इस वार्तालाप में माताजी की अधिकांश बातें मेरी डायरी से हैं। हम उनके साथ जो भी बातचीत करते थे, उन्हें यथासम्भव ईमानदारी से लिख लेते थे। यह वार्तालाप माँ के द्वारा न तो देखा गया है और न ही सुधारा।'

मैं यह कहते हुए आरम्भ करूँगी कि मैं संस्मरण या स्मरण शब्द से सहमत नहीं हूँ। श्रीमाँ भूतकाल की नहीं हैं। शायद 'वे' वर्तमान की भी नहीं हैं। 'वे' भविष्य की हैं।

मैं काफ़ी भयभीत थी, अब भी भयभीत हूँ। जब श्रीमाँ के बारे में कुछ कहने की कोशिश करते हैं, तब वास्तव में हम अन्य चीज़ें सामने रखते हैं जो उन्होंने हमें किन्हीं विशेष मनोवैज्ञानिक क्षणों में कही थीं। बहरहाल, यह सबके लिए सच है या नहीं हमें पता नहीं। हम सिर्फ़ शब्दों को दोहरा सकते हैं, जो मूल को छोड़ कर, मात्र आवरण हो सकते हैं। फिर भी, मित्रों या श्रीमाँ के बच्चों के बीच मैं बातें कर सकती हूँ, उदाहरण के लिए, आनन्द और दीपशिखा (जिन्होंने मुझे यह संस्मरण लिखने की प्रेरणा दी) को ही ले लो, क्योंकि हम लोग केवल एक-दूसरे के दृष्टिकोणों का आदान-प्रदान कर रहे हैं।

भयभीत होने का दूसरा कारण यह है कि हमें समझना चाहिये कि श्रीमाँ के साथ हमारा सम्बन्ध भौतिक स्तर का नहीं है। हाँ, एक झलक, एक स्पर्श, समीप से गुज़रती हुई श्रीमाँ की एक छोटी-सी मुस्कान हमारे जीवन में सब कुछ बदल देती तथा हमारी कठिनाइयों को दूर कर देती है। एक बार जब मैंने उनसे शिकायत की, "इन दिनों हम आपसे भौतिक रूप से ज़्यादा मिल नहीं सकते" (ज़ाहिर है, मैं सन्तुष्ट नहीं थी)। "अजीब बात है", उन्होंने कहा, "मैं हफ़्ते में तीन बार तो क्रीड़ांगण में आती हूँ, और मूँगफली, टॉफ़ी आदि बाँटती हूँ।" वितरण के समय क्रीड़ांगण में वे

भारत के **नक्शे** के सामने बैठती थीं और जैसे ही हम एक पंक्ति में लग कर उनके सामने से गुज़रते, वे जल्दी-जल्दी वितरण करतीं। कई बार हमें लगता था कि उन्होंने हमारे सामने देखा तक नहीं। पर वे कहतीं, "एक क्षण मेरे लिए काफ़ी है, मैं तुममें से हर एक के अन्दर कार्य करती हूँ।" अतः, हमारे शब्द बहुत, बहुत दोषपूर्ण भी हो सकते हैं।

माँ हमारे अन्दर लगातार काम कर रही हैं। और काम है, अपनी सत्ता के सभी भागों में जागरूकता तथा पूर्णता को लाना। शुरू से ही वे हमारे सभी के अन्दर यही चीज़ें करती आयी हैं। मुझे विश्वास है कि अब भी वे 'अपने' बच्चों के साथ ये चीज़ें करती हैं, चाहे वे दुनिया के किसी भी छोर पर क्यों न हों।

हमारी सत्ता के विभिन्न हिस्सों के प्रति सचेतन बनाने में वे हमारी मदद कैसे करती थीं इसकी भी एक बानगी देख लीजिये—सन् १९४८ में, माँ अपनी 'प्रार्थना और ध्यान' पुस्तक हमें पढ़ाया करती थीं, ऊपरवाले लम्बे कमरे में, जहाँ अब हम दर्शन के लिए जाते हैं। हममें से कुछ के साथ कक्षा की शुरुआत हुई, बाद में काफ़ी लोग आना चाहते थे इसलिए कक्षा बड़ी हो गयी। एक बार, अचानक माँ ने हमसे पूछना आरम्भ किया: "तुम लोग क्या सोच रहे हो?" उन्होंने यह एक या दो लोगों के साथ किया। कुछ लोगों ने बहुत अच्छी बातें कहीं। अचानक उन्होंने मेरी तरफ़ इशारा किया: "और तुम? तुम अभी क्या सोच रही हो?" उलझन में पड़ कर मैंने इतना ही कहा, "कुछ नहीं, माँ।" "ओह!" उन्होंने कहा, "तुम एक बहुत बड़ी योगी बन गयी हो। तुम्हारे मस्तिष्क में कोई विचार ही नहीं है!" मैंने कहा, "नहीं माँ, बात ऐसी नहीं है। बात दरअसल यह है कि मैं बहुत घबरायी हुई थी। मैं सोच रही थी, 'अगर आप मुझसे पूछेंगी, तो मैं क्या करूँगी?' और जब आपने पूछा तो मैं सब कुछ भूल गयी!" बाद में, जब मैं उनके आशीर्वाद लेने गयी, उनकी विशेष मुस्कान ने मुझे भली-भाँति समझा दिया कि वे मेरी ईमानदारी से प्रसन्न थीं। यह वह कार्य है जो वे कर रही थीं, जिससे हम अपने प्रति थोड़ा और सचेतन बन जायें। यही कारण है कि उनके कई वार्तालाप केवल शब्द नहीं हुआ करते थे।

मैं उन्हें बहुत कम पत्र लिखती थी, लेकिन जब कभी मैं उन्हें लिखती, मुझे मुश्किल से उनका उत्तर मिलता था। मुझे इससे बहुत बुरा लगता था।

मेरे मित्रों को कितने सुन्दर पत्र मिलते थे! मेरे पास मेरे पत्रों के लिखित उत्तर बहुत कम हैं। एक बार, क्रीड़ांगण में, वितरण के समय जब मैं उनके सामने से गुज़र रही थी, वे रुकीं और मेरा हाथ थाम कर उन्होंने कहा, "तुम्हें मेरा उत्तर मिल गया?" "नहीं माँ, आपने मेरे पत्र का उत्तर ही नहीं दिया।" उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा, "मैंने तुम्हें उत्तर दिया है और मुझे मालूम है कि वह तुम्हें मिल गया है। और इसीलिए मैंने तुम्हें नहीं लिखा।" तो अब आप समझ गये कि मेरे कहने का क्या मतलब है। हम कुछ चीज़ें शब्दों में कह सकते हैं, लेकिन माँ की थाह पाना असम्भव है, मानवीय रूप से उन्हें क्या चाहिये, उन्होंने क्या किया या नहीं किया। उनकी क्रिया का क्षेत्र मानवीय धारणा से परे है।

(क्रमशः) अनु. वीणा

इबादत

एक मुस्लिम सन्त बड़े ईश्वर-भक्त थे। पाँच दफ़े नमाज़ पढ़ने का उनका नियम था। एक रोज़ वे थके-माँदे थे, सो गये। जब नमाज़ का वक़्त हुआ तो किसी ने जगाया, "उठो-उठो, नमाज़ का वक़्त हो गया है।" वे उठे और कृतज्ञता से कहने लगे कि "भाई, तुमने तो मेरा बहुत बड़ा काम किया। मेरी इबादत रह जाती तो क्या होता? तुम कौन हो भाई?"

उसने कहा कि "मेरा नाम इब्लीस है।" सन्त को बड़ा अचरज हुआ, इब्लीस यानी, शैतान। सन्त ने कहा कि "इब्लीस! अरे, तुम्हारा काम तो लोगों को इबादत से, धर्म-कार्य से रोकना है। तुम मुझे इबादत करने के लिए कैसे जगाने आये?"

शैतान बोला, "इसमें भी मेरा मतलब ही है। एक बार पहले तुम ऐसे ही सो गये थे। नमाज़ का वक़्त बीत चुका था। मैं बहुत ख़ुश हुआ। लेकिन तुम जागे तो इतने पछताये कि अल्लाह के ज़्यादा प्यारे हो गये। इसलिए मैंने सोचा कि कहीं फिर से ऐसा न हो कि तुम अल्लाह के और भी ज़्यादा प्यारे हो जाओ। बेहतर यही है कि तुम्हें नमाज़ के वक़्त जगा दूँ!"

सच्चे पुण्य का भागी

उत्तराखण्ड के बदरी-केदार की यात्रा का महत्त्व, हज़ारों वर्षों से हमारे देश के लोगों के मन और ज़ुबान पर है। जनश्रुति है कि द्वापर में पाण्डवों ने केदारनाथ की यात्रा की थी और ईसा से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व आद्य शंकराचार्य केरल से ढाई हज़ार मील चल कर बदरीनाथ आये थे। यह भी कहा जाता है कि वर्तमान 'पीठ' उन्हीं का स्थापित की हुई है।

अठारहवीं शताब्दी की बात है। पूना के श्रीमन्त पेशवा के दीवान वृद्धावस्था में राजकाज छोड़ कर घर ही पर विश्राम करते थे। उनके मन में बहुत वर्षों से बदरी-केदार यात्रा की कामना थी, किन्तु कोई-न-कोई कारण उपस्थित हो जाता और वे तीर्थयात्रा पर निकल नहीं पाते। आख़िर, एक बार उन्होंने सब तैयारियाँ कर लीं। कौन-कौन से मुसाहिब, नौकर, रसोइये, सिपाहियों आदि को साथ रखा जाये और कैसी सवारियाँ, यान-वाहन आदि रहें, इस सबों की फ़ेहरिस्त बन गयी। यहाँ तक कि रसद के सामान की भी, सावधानी से सूची बना डाली गयी।

उनके पड़ोस में हीरू नाम का एक दर्ज़ी रहता था। उसके मन में भी बदरी-केदार जाने की इच्छा थी, किन्तु अच्छा साथ नहीं मिल पाया, इसलिए जा नहीं सका था।

उसने भी कई अन्य लोगों की तरह दीवानजी से चलने की स्वीकृति ले ली। उन दिनों रास्ते बीहड़ थे, सड़कें भी अच्छी न थीं। चोर-डाकुओं का डर बना रहता। इसके अलावा, साँप-बिच्छू और जंगली हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय तो था ही। बीमारियाँ भी होती रहतीं। इन्हीं कारणों से लोग ऐसी बीहड़ यात्राओं में बड़े लोगों के किसी दल में शामिल होने का सुयोग ढूँढ़ते थे।

दीवानजी ने महीनों पहले से ही, अपने बेटों और पोतों को काम की सम्हाल देनी शुरू कर दी थी। कारिन्दों और पटवारियों को, कहाँ से कितनी अदायगी मिलनी है और उनके हलके की ज़मीन-ज़ायदाद के पट्टे आदि के बारे में क्या और कैसे करना है, इसकी भी हिदायतें देकर आदेश दिया कि पीछे से किसी प्रकार का नुक़सान न पहुँचे।

हीरू ने चलते समय पत्नी और पुत्र को केवल इतना कहा कि भगवान्

का स्मरण करते रहना; यदि उनकी कृपा रही तो फिर मिलेंगे।

निश्चित मुहूर्त पर यात्री-दल ने प्रस्थान किया। शंख बजाये गये, मन्दिरों के घण्टे बजे। विदा देने के लिए लोग उमड़ पड़े। लगभग एक कोस तक स्त्री-पुरुष और बच्चे भजन गाते हुए, पहुँचाने के लिए साथ चले। बड़ी श्रद्धा से सबने 'पालागन' किया।

तेरह सौ मील की लम्बी यात्रा थी। रोज़ पन्द्रह-बीस मील चलते। रात में किसी निरापद स्थान पर रुक जाते। भजन-कीर्तन होता रहता। इसी तरह चलते-चलते मालवा के किसी गाँव के पास एक दिन इनका पड़ाव हुआ। जगह सुनसान-सी लगी। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि गाँव में हैज़े का प्रकोप है, इसलिए अधिकतर लोग यहाँ से चले गये हैं। कुछ ग़रीब और हरिजन बच गये हैं। चिकित्सा के अभाव में, उनमें से भी कई-एक रोज़ाना भगवान् के यहाँ चले जाते हैं।

रात घनी हो आयी, भजन-कीर्तन समाप्त हो गये और यात्री सो गये। हीरू को नींद नहीं आयी। एक अजीब-सी बेचैनी उसे सता रही थी। वह चुपचाप उठा और पहरेदारों की नज़र बचा कर गाँव की ओर चल पड़ा। पास पहुँचते-पहुँचते हवा के झोकों के साथ सड़ान्ध आने लगी। वह तेज़ी से बढ़ा। एक घर से किसी छोटे बच्चे के रोने की आवाज़ सुनायी पड़ी। अन्दर जाकर देखा कि दो-तीन वर्ष का एक बालक पास में लेटी हुई अपनी माँ का आँचल खींच-खींच कर रो रहा है। माँ विसूचिकाजनित गन्दगी में लिपटी सिसक रही है। सारी बातें एक क्षण में उसके मस्तिष्क में घूम गयीं। दौड़ कर उसने आँगन में बँधी बकरी को दुहा और बच्चे को दूध पिलाया। फिर उसे एक ओर बैठा कर उस महिला को धो-पोंछ कर साफ़ किया। उसे ख़याल आया कि दवाइयों की पोटली तो उसकी पेटी में है, क्यों न वह ले आये, इसकी जान बच जायेगी।

फ़ौरन वह उलटे पाँव, पड़ाव की ओर भागा। लोग गहरी नींद में थे। 'पेटी खोलने पर खटका होगा', 'बिस्तर में धोती और कपड़े हैं, शायद ज़रूरत पड़ जाये'—सोचते हुए उसने चुपचाप बिस्तर और पेटी उठायी और गाँव में लौट आया। वहाँ आकर देखा कि बच्चा आराम से सोया है और महिला को भी कुछ राहत है। उपचार के लिए साथ लायी हुई दवा दी। ईश्वर-कृपा से उसे लाभ हुआ। सुबह होने पर वह दूसरे घरों में गया। वहाँ

भी हैज़े के रोगी कराह रहे थे। वह उन्हीं की सेवा में लग गया।

उधर तीर्थ-यात्रियों का पड़ाव उठने लगा। थोड़ी देर तक लोगों ने हीरू की प्रतीक्षा की, फिर आगे के लिए चल पड़े।

लगभग एक महीने तक हीरू उस गाँव में रहा। यात्रा के लिए जो पूँजी लेकर चला था, समाप्त हो चुकी थी। महामारी के हट जाने पर लोग गाँव में वापस आने लगे। सभी कृतज्ञ थे। उसका गुणगान करते थे परन्तु हीरू मौन रहता। उसके मन में रह-रह कर यही बात उठती कि तीर्थयात्रा न कर, शायद उससे कोई अपराध हो गया। एक दिन वह अपने घर के लिए रवाना हुआ। विदा के समय गाँव के लोगों ने अपने घरों से गुड़-चना-चिड़वा दिया, गाँव की सीमा तक पहुँचाने आये। उस सबकी आँखें गीली थीं। श्रद्धा और स्नेहभरी शुभाकांक्षा के अलावा, वे ग़रीब दे भी क्या सकते थे?

कुछ दिनों बाद, थका-हारा हीरू अपने घर वापस पहुँचा। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यात्रा पूरी न कर वह बीच में क्यों लौट आया? तरह-तरह के प्रश्न पूछे गये, 'क्यों आये? क्या बीमार हो गये? झगड़ा-तकरार हो गया?' आदि। वह चुपचाप गर्दन झुकाये रहता। पत्नी से केवल इतना कहा कि तीर्थ-यात्रा का पुण्य उसके भाग्य में बदा न था। पर-निन्दा और आलोचना में लोगों को आनन्द आता है। तरह-तरह की बातें उस ग़रीब के बारे में फैलायी गयीं, परन्तु हीरू ने कोई सफ़ाई नहीं दी। सिर्फ़ इतना कह देता, "मेरे जैसी पापी की पहुँच, प्रभु के दरबार में कहाँ?"

दो महीने बाद, दीवानजी का दल पूना लौट आया। शहर के लोग, उनके स्वागत और चरण-रज के लिए आये। हीरू भी दुबका-सा आया और पैर छूकर, एक ओर बैठ गया। उन्होंने एक बार, उसकी ओर देखा मगर कुछ कहा नहीं।

यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हुई—इस उपलक्ष्य में, अगले दिन बारह गाँवों के लोगों का, भगवान् के प्रसाद के लिए भोज हुआ। सभी दीवानजी का यशोगान और जय-जयकार कर रहे थे।

दस-बारह दिन बाद उनके यहाँ से हीरू का बुलावा आया। उसे लगा दीवानजी बुरा-भला ज़रूर कहेंगे। सहमा-सा वह उनकी कोठी पर पहुँचा और द्वारपाल को ख़बर दी। दीवानजी खुद ही निकल आये और उसे साथ

लेकर अपने निजी कक्ष में गये। एकान्त में उन्होंने हीरू से कहा—"जब से मैं आया, तुमसे एक बात पूछने की मन में थी, किन्तु काम-काज की देखभाल और लोगों की भीड़-भाड़ में मौक़ा ही नहीं लग पाया। तुम्हें भगवान् की सौगन्ध है, झूठ मत बोलना। ऐसा लगता है कि उस दिन तुम हमलोगों को उस गाँव के पड़ाव पर छोड़ कर अकेले ही आगे चले गये, मैंने देखा कि तुम भगवान् बदरी विशाल का शृंगार कर रहे हो और पास में बड़े पुजारीजी आरती कर रहे हैं। कई आवाज़ें देकर तुम्हें बुलाया भी, परन्तु भीड़ में तुम न जाने कहाँ समा गये। इसके बाद केदारजी की आरती और शृंगार में भी देखा कि तुम जगमोहन के कक्ष में हो। वहाँ तो केवल प्रमुख पुजारी ही जा सकते हैं, तुम्हें कैसे जाने दिया? मैंने भगवान् की भेंट में सोने के गहने और ज़री की पोशाकें दीं, फिर भी मुझे चौखट तक ही जाने दिया गया!"

हीरू ने दीवानजी के पैर पकड़ कर रोते हुए कहा—"माई-बाप, आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो उस रास्ते के गाँव में रोगियों की सेवा के लिए कुछ दिनों तक रुका रहा और फिर वहीं से घर वापस आ गया। मुझसे बड़ा अपराध हो गया कि आपसे बिना पूछे, मैंने दल छोड़ दिया। आप-जैसे महापुरुषों के साथ का सुयोग पाने पर भी भगवान् के दर्शन-लाभ से वञ्चित रह गया।"

दीवानजी को असमञ्जस हुआ। कानों-सुनी बात झूठी हो सकती है, पर आँखों देखी नहीं। उन्हें हीरू की आँखों में अब भी भगवान् बदरी-विशाल की मूर्ति दिखायी दे रही थी। "भाई! तुम सचमुच ही प्रभु के प्यारे हो"—यह कहते हुए उन्होंने गद्गद होकर हीरू को गले लगा लिया।

'भूले न भुलाये' पुस्तक से —श्री रामेश्वर टांटिया

कल सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच
दो सुनहरे घण्टे कहीं खो गये,
प्रत्येक साठ हीरक पलों से जटित था;
कोई पुरस्कार नहीं घोषित किया गया इसके लिए,
क्योंकि वे हमेशा, हमेशा के लिए गुम हो गये हैं।

—होरास मान

प्रसन्नता साधना का नमक है

सबसे बड़ी समस्या यह है कि भगवान् को कैसे पाया जाये और उनके साथ कैसे एक हुआ जाये। इसमें उपाय का महत्त्व नहीं है, महत्त्वपूर्ण है, भगवान् को पाना। एक तरीक़ा है अन्दर जाने का और दूसरा तरीक़ा है ऊपर उठ कर भागवत शान्ति को पाने का। सबसे अच्छी बात तो यह है कि हम दोनों के लिए अभीप्सा करें और प्रकृति की आवश्यकता के अनुसार श्रीमाँ को ही फ़ैसला करने दें।

एक दिन अत्यधिक निराशा और निरुत्साह से भर कर, बड़े ही नाटकीय भाव के साथ किसी ने श्रीमाँ को लिखा कि मैं अपना शरीर छोड़ना चाहता हूँ ताकि अगले शरीर में आपके ज़्यादा नज़दीक रह सकूँ। उत्तर में माँ ने कहा, "यह शरीर छोड़ने की बात निरी मूर्खता है और बहुत बड़ी भूल है। हो सकता है कि मृत्यु के बाद जो नया शरीर मिले वह पहले से ज़्यादा ख़राब हो। हमें अगले जन्म की चिन्ता न करनी चाहिये बल्कि अन्तिम श्वास तक अपने वर्तमान शरीर को सुधारने और उसकी सभी सम्भावनाओं को चरितार्थ करने की कोशिश करनी चाहिये।" हमें हमेशा यह याद रखना चाहिये कि जब तक साँस तब तक आस।

श्रीअरविन्द ने किसी को लिखा था, "कठिनाइयों का सामना करने की जगह अगर व्यक्ति अपने वर्तमान जीवन को क्रोध या उग्रता के मारे छोड़ दे तो अगला जीवन ज़्यादा अच्छा होने की जगह ज़्यादा ख़राब हो जाता है। इस तरह की भावनाओं को पोसने की जगह श्रीमाँ की कृपा की ओर मुड़ो जो कभी किसी को निराश नहीं करती और तुम्हें भी असफल न करेगी।"

अगर हम प्राचीन साधु-सन्तों के जीवन पर नज़र डालें तो वहाँ भी बहुत-से स्थलों पर निराशा और असफलता की यही कहानी दिखायी देगी, उनकी चिल्ल-पों सुनायी देगी और भगवान् की ओर से डाँट-फटकार और उसके बाद कृपा की वर्षा दिखायी देगी। कई बार भक्त रोदन ठान लेते हैं कि भगवान् का सामीप्य नहीं प्राप्त हो रहा, उनके दर्शन का लाभ नहीं मिल रहा, फिर इस जीवन से लाभ ही क्या? ऐसी मूढ़ता-भरी बातों पर भी माताजी मरहम लगाते हुए कहती हैं, "अपने अन्दर पैठो और तुम वहाँ अपने चैत्य पुरुष को पाओगे और साथ ही देखोगे कि वहाँ तुम्हारे जीवन का

जीवन, तुम्हारे प्राणों का प्राण बहुत निकट तथा ठोस रूप में उपस्थित है।"

माताजी चाहे जितने आश्वासन दें परन्तु व्यक्ति का मन स्थिर नहीं होता। सन्देह श्रद्धा के साथ और भय आत्म-विश्वास के साथ झगड़ता रहता है। माँ कहती हैं कि उन्हें सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि लोग सोचते हैं कि वे मेरे कर्मों के कारण को जान सकते हैं! "मैं हर एक के साथ, हर परिस्थिति में, हर आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग क्रिया करती हूँ।" साधक को सबसे पहले भय के भार को उतार फेंकना चाहिये और माँ के प्रति स्पष्टवादिता और सच्चाई पैदा करनी चाहिये। इतने से ही माँ और उसके बीच की दूरी ग़ायब हो जायेगी।

जैसे ही एक कुहरा छँट जाता है, दूसरा आकर उसका स्थान भर देता है। एक तरह के सन्देह चले जाते हैं कि दूसरे सन्देह आ धमकते हैं। ग़लत लगाव, उदासीनता, रिक्तता, शुष्कता, चिड़चिड़ापन आकर साधक और भगवान् के बीच में जम जाते हैं। माँ ने कहा है कि उदास या दुःखी होना कोई गुण नहीं है। श्रीअरविन्द कहते हैं, "प्रसन्नता साधना का नमक है, वह निराशा से हज़ार गुना अच्छी है।" माताजी किसी साधक से कहती हैं, "भगवान् दुःखी नहीं हैं, भगवान् को पाने के लिए तुम्हें समस्त दुःख और समस्त भावत्मक दुर्बलता को निकाल फेंकना चाहिये। याद रखो, चैत्य प्रेम हमेशा शान्त और प्रसन्नचित्त होता है। प्राण ही बिना कारण, अपने-आपको नाटकीय बनाता और दुःखी रखता है।"

पु. जनवरी १९९३ से (आयंगार कृत 'ऑन द मदर' पुस्तक से)

ये कठिनाइयाँ तुम्हारी अपनी नहीं हैं। ये निश्चेतना की चीज़ें हैं और जहाँ कहीं, जब कभी उन्हें अवसर मिल जाये वे सिर उठाती हैं। तुम जब कभी उन्हें ऊपर आते देखो, अपनी चेतना यानी चैत्य चेतना को उनकी ओर फेंको तो वे ग़ायब हो जायेंगी, लेकिन वे बार-बार, शायद लाखों-करोड़ों बार लौट आती हैं। तुम्हें धीरज धरना और उन्हें चैत्य के आगे प्रस्तुत करते रहना चाहिये। एक और उपाय भी है—तुम अपने-आपको भगवान् को सौंप दो और अपनी लड़ाई भगवान् को लड़ने दो। लेकिन इस उपाय में भी तुम्हें धैर्य की ज़रूरत होगी, क्योंकि विजय एक दिन में नहीं आ जायेगी।

—श्रीमाँ

अनाहत नाद

हे महेश्वर!
तुमने विश्व को,
असंख्य सूर्यों का प्रकाश देकर
अपनी पलकों के द्वार बन्द कर लिए।

सृष्टि को,
असीम स्वरों का संगीत देकर
अपने होठों के कपाट बन्द कर लिए।

जगत् को,
चेतना के महासागर में लीन कर लिया।

मैं तुमसे—
उस आलोक की भिक्षा चाहता हूँ
जिसे तुम अपनी बन्द पलकों में समेटे हो।

उस अनाहत नाद को सुनना चाहता हूँ
जो तुम्हारे हृदय-कमल में लीन हो गया है।

उन वासनाओं का,
ज्ञान पाना चाहता हूँ,
जिनके प्रहरी बन कर—
तुम आत्मलीन हुए बैठे हो।

—स्वामी रामनिरञ्जन तीर्थ 'नागौर' से साभार

सौन्दर्य है 'उनके' पदचिह्न जो यह दिखलाते हैं कि
'प्रभु' यहाँ से गुज़रे हैं।

महर्षि पाणिनी के जीवन की दो कहानियाँ

बच्चो, क्या तुम लोग जानते हो कि क्या है शिवसूत्रजालम्? ये हैं माहेश्वर-सूत्राणि जिन्हें शिवजी ने प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी के सम्मुख प्रकट किया था। कहानी यह है—

यह तो जगत्-प्रसिद्ध है कि बालक पाणिनी सारे गाँव में महामूर्ख के नाम से जाना जाता था, लोग कहते थे कि उसके भेजे में भूसा भरा है और रोज़-रोज़ बड़ों के व्यंग्य-बाणों और बच्चों और समवयस्कों के हँसी-मज़ाक और तानों के शरों से उस बिचारे का हृदय हमेशा छलनी ही बना रहता था। किसका-किसका मुँह बन्द करता फिरता वह? और सामर्थ्य ही कितनी-सी थी उस बच्चे में? सुबह-दोपहर-रात बस माँ का आँचल भिगोता रहता, कहता—ऐसी छीछा-लेदर ज़िन्दगी लेकर करूँ क्या मैं? विधवा माँ यथाशक्ति उसे हर तरह से समझाती, जितना हो सकता, अपनी आँख की ओट से ओझल न होने देती, लेकिन कहाँ तक अपने आँख के तारे को दामन में छुपा कर रखती वह विवशा ब्राह्मणी?! आये दिन बच्चा बदहवास रहता।

रोज़ की तरह उस दिन भी बालक दुःख से कातर घर पहुँचा। माँ ने हाथ-पाँव धुलवा, समझा-बुझाकर उसके सामने खाना परोसा। कुछ देर बाद आकर देखती है कि वह पुरसी थाली के सामने ज्यों-का-त्यों गुमसुम बैठा है, सीने से लगाते ही बालक फफक उठा, बोला, क्यों मुझे रोज़-रोज़ खाना देकर बड़ा कर रही हो माँ? जन्म से निर्बुद्धि मैं मरते दम तक जड़मति ही रहूँगा, क्यों नहीं ऐसा कोई हथौड़ा दे देती जिससे मैं अपने अज्ञान की शिला को चूर-चूर कर डालूँ! बेकार खाना खिला कर मुझे और बड़ा बौड़म बनाये दे रही हो, नहीं चाहिये अब मुझे नये कपड़े, नये व्यञ्जन, पुराने-धुराने कपड़े पहनूँगा, सड़ा-बुसा खाना खाऊँगा ताकि इस जनम में जल्दी-से-जल्दी धरती से विदा लेकर, भगवान् जी से अगले जनम के लिए विद्या की भीख माँग लाऊँ—और बालक ने तैश में आकर खाना दूर धकेल दिया, झन्ना उठी थाली और सन्ना उठा माँ का हृदय और कौंध उठा एक विचार... बोली, बेटा, एकदम ठीक कह रहा है तू कि ईश्वर ने तुझे

महामूर्ख रच कर इस धरती पर भेजा, और जो भूल वह ईश्वर कर बैठा उसे धरती की तेरी यह माँ पोंछ नहीं सकती। यह तेरी भौतिक माँ तो बस अन्न-वस्त्र देकर, तुझे पाल-पोस कर बड़ा करना ही जानती है, जा बेटा, जा, उस सर्वसमर्थ, सर्वव्यापी प्रभु की खोज में, केवल वही तेरे ललाट पर लिखी भाग्य-रेखा को परिवर्तित कर सकता है। सच कहती हूँ पुत्र, तेरे अन्दर ज्ञान की इस अमिट प्यास को देख मैं दृढ़तापूर्वक कह सकती हूँ कि मेरा बेटा एक दिन दुनिया में महापुरुष के रूप में जाना जायेगा। जा वत्स, आज तेरी जन्मदात्री तुझे श्रेयमार्ग अपनाने के लिए अपने प्रेम के बन्धनों से नहीं बाँधेगी! निकल जा तू हिमालय-पर्वत के वनों में जहाँ शिवशंकर का वास है, डूब जा उनकी आराधना में, वे आशुतोष देर-सबेर तुझ पर ज़रूर अपनी कृपा बरसायेंगे।

माँ के इस कथन ने बालक का तन-मन ख़ुशी से सराबोर कर दिया। वह घर से अकेला ही निकल पड़ा। बाहरी दृष्टि से एकदम अकेला था बच्चा, लेकिन आपादमस्तक माँ के आशीर्वादों से घिरा-बँधा था।

बालक घोर जंगल की ओर चल पड़ा। वहीं उस छोटे साधु ने अपनी तपस्या की धूनी रमायी। दिन-रात वह तप में डूबा रहता, न खाने की सुध, न पीने का होश। भूख-प्यास अगर उसे सतातीं तभी न वह खान-पान पर ध्यान देता! वन के जीव-जन्तु पहले तो इस नवागन्तुक को देख घबराये, दूर-दूर रहे लेकिन फिर उसके इतने नज़दीक आ गये कि कन्द-फल-मूल खाने का न्योता देने लगे। और कुछ नहीं तो बन्दर अपनी पूँछ चला कर बच्चे से खाने का मानों आग्रह करता, लेकिन वह बालक तो जैसा बैठा था, वैसा बैठा रहा—रात-दिन तपस्या में रत!

कैलाश पर्वत पर देवी पार्वती के कर्णों में '३ॐ नमः शिवाय', '३ॐ नमः शिवाय' जप की गूँज-प्रतिगूँज निरन्तर प्रतिध्वनित हो रही थी... उन्होंने भगवान् शिव से कहा—"स्वामी! धरती पर कोई कई दिनों से लगातार आपको पुकार रहा है, कृपया जल्दी-से-जल्दी पृथ्वी पर उतर कर उसकी मनोकामना पूर्ण कर अपने आशुतोष नाम को सार्थक कीजिये।"

देवी पार्वती की बात मान कर महादेव पृथिवी पर अवतरित हुए। घनघोर वन में प्रवेश करते ही '३ॐ नमः शिवाय' की सुमधुर धुन बज उठी। शिवजी की दृष्टि लघु बालक पर पड़ी। वह इतनी घोर-गभीर तपस्या में

डूबा हुआ था कि सारे वन का वातावरण भी तपोमय हो उठा था, तपस्या के स्पन्दन उस धरती से उठ कर आकाश की ओर निरन्तर जा रहे थे। भगवान् शिव भी मुग्ध हो भावविभोर हो गये, आनन्द से उन्मत्त हो उठा वह पूरा वन-प्रदेश और नटराज का नृत्य आरम्भ हो गया। नृत्य के अन्त में उन्होंने चौदह बार अपना डमरू बजाया। कहते हैं—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव-पञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान् एतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

अर्थात्—सनत् कुमार इत्यादि सिद्धपुरुषों को वाणी की विद्या से कृतार्थ करने के लिए भगवान् शिव ने नृत्य के अन्त में अपना डमरू चौदह बार बजाया जिससे निम्नांकित सूत्र उपजे... औरों के लिए वह केवल 'ढमढमढमढम' निनाद था, लेकिन लघु तपस्वी ने जो सुना वह यह था—

अ इ उ ण्, ऋ लृ क्, ए ओ ङ, ऐ औ च्, ह य व र ट्, ल ण्, ञ म ङ ण न म्, झ भ ञ्, घ ढ ध ष्, ज ब ग ड द श्, ख फ छ ठ थ, च ट त व, क प य, श ष स र्, ह ल्।।

ये हैं संस्कृतवर्णमाला से गर्भित माहेश्वर सूत्र।

वास्तव में समस्त संस्कृत के व्याकरण के बीज हैं ये सूत्र जिन्हें आशुतोष ने ऋषि पाणिनी को प्रदान किया था और जिन्हें सींच कर पाणिनी ने उस विशाल वृक्ष में परिवर्तित कर दिया जिसकी छाया में संस्कृत भाषा विराजती है।

इसके साथ-साथ पाणिनी के बचपन तथा उनके जीवन की एक और प्रसिद्ध कहानी भी सुनते चलें—

महर्षि पाणिनी द्वारा रचित 'अष्टाध्यायी' पुस्तिका विश्व के आश्चर्यों में एक आश्चर्य है। संस्कृत-भाषा का सारा व्याकरण कुछ पन्नों की पुस्तिका में उन्होंने समेट दिया! ऐसी सूत्रमयी भाषा है अष्टाध्यायी की कि गणित के विशेषज्ञ भी दाँतों तले उँगली दबाये रह जाते हैं। 'इको यणचि' इस एक छोटे से सूत्र में संस्कृत-भाषा का एक ऐसा व्यापक नियम छुपा हुआ है जिसे अच्छी संस्कृत जानने वाला ही समझ सकता है। इन दो शब्दों को सुन कर सामान्य लोगों के पल्ले तो कुछ भी नहीं पड़ेगा!! अष्टाध्यायी का

प्रत्येक सूत्र इतना छोटा और इतना सघन है कि उसमें से एक मात्रा कम करना भी असम्भव कार्य है। और यह भी कहा जाता है कि कभी-कदास स्वयं आचार्य पाणिनी उन सूत्रों में कहीं कोई मात्रा कम कर पाते तो उनके यहाँ बेटे के जन्म का-सा महोत्सव मनता।

कहा जाता है कि पाणिनी औसत दर्जे के विद्यार्थी भी न थे और सचमुच विद्यालय में यह छात्र 'मूर्खराज-शिरोमणि' के नाम से जाना जाता था क्योंकि अध्यापक की बातें उसके सिर के ऊपर से गुज़र जातीं, कक्षा में महामूर्ख की पदवी लिये वह सबसे पीछे बैठता और मुँह बाये बस इधर-से-उधर ताकता रहता।

एक दिन अध्यापक उस पर इतना बिगड़े कि उसे दण्ड देने के लिए हाथ में सोटी उठा ली। डरे-सहमे बच्चे ने हथेली खोली, उस पर बेंत बरसाने को उतारू अध्यापक अचानक ठिठक कर खड़े के खड़े रह गये। बालक चौकन्ना हो गया। दीर्घ निःश्वास छोड़ कर अध्यापक बोल उठे—"जाओ बेटा, अपनी जगह पर जाकर बैठ जाओ।"

बालक फटी-फटी आँखें लिये बोल उठा—"क्या हुआ गुरुजी?"

"अरे, तुझे विद्या कभी कैसे आ सकती है भला? तेरे हाथ पर तो विद्या की लकीर ही नहीं है!!"

गुरुजी की बात ने बालक के दिल पर सौ-सौ हथौड़ों की-सी चोट की—"विद्या की लकीर ही नहीं है!!"

बच्चा काठ बन गया। गुरुजी ने उसे पुचकारा। अचानक वह बोल उठा—"गुरुजी, अपना हाथ दिखलाइये, कहाँ होती है विद्या की लकीर?"

अध्यापक ने बच्चे का मन रखने के लिए अपना हाथ खोल उसे विद्या की रेखा दिखला दी।

उस क्षण से बालक को चैन कहाँ! भूख-प्यास सब हवा हो गये। रात के सन्नाटे में जब सारा जग सो रहा था उस नन्हें हृदय में हाहाकार गूँज रहा था। वह घर से निकल पड़ा। कुँए के पास से एक नुकीला पत्थर उठा उसने अपने कोमल हाथ पर एक रेखा खींच दी—हाँ, विद्या की रेखा! सारा हाथ लहू-लुहान हो गया। उस असह्य पीड़ा में उसे असीम आनन्द मिल रहा था—"ओह! अब मेरे हाथ पर विद्या की रेखा खिंच गयी! अब मेरी सारी कठिनाई चली गयी, मैं भी औरों की तरह आसानी से विद्या-लाभ

कर पाऊँगा।" घोर पीड़ा से आँखों से आँसू और आत्म-सन्तोष से हृदय में अमृत झर रहा था।

अगले दिन सवेरे-सवेरे वह विद्यालय में जाकर बैठ गया। अध्यापक के अहाते में प्रवेश करते-न-करते वह सरपट दौड़ा उनकी ओर। अपना सूजा, लाल हाथ दिखला कर चहक उठा—"गुरुजी देखिये, मैंने अपनी हथेली पर विद्या की रेखा बना ली। अब तो विद्या पाने से मुझे कोई नहीं रोक सकता।" उसकी रक्तरञ्जित हथेली देख गुरु ने भावविह्वल हो उसे अपने सीने में भर लिया। रुँधे गले से बोले, "बेटा, तूने यह क्या कर डाला! हाँ, लेकिन सचमुच अब तुझे विद्या पाने से कोई नहीं रोक सकता। जा बेटा, आज तू मेरे हृदय में पैठ गया है, अतः आज से मेरा यह कर्तव्य-कर्म हो गया है कि मैं तेरे अन्दर अध्ययन की इस ज्वाला को धधकती हुई अग्नि में रूपान्तरित कर दूँ।"

धीरे-धीरे बालक के हाथ का घाव भर कर सूख गया, कुछ दिनों तक वहाँ एक सफ़ेद लकीर बनी रही। समय के साथ-साथ वह भी ग़ायब हो गयी और बालक का हाथ ठीक पहले जैसा हो गया लेकिन उसके हृदय की कसौटी पर दृढ़ संकल्प की जो रेखा खिंच गयी थी वह तो समय के साथ-साथ और भी गहरी होती चली गया। जब तक वह पाठ नहीं समझता खाना-पीना-सोना सब ताक पर धरे रह जाते।

ऐसी अटूट लगन के आगे स्वयं देवी सरस्वती ने आकर उसका हाथ थाम लिया। कभी 'महामूर्ख' कहाने वाला वह बालक संस्कृत-भाषा का बेजोड़ वैयाकरण बन गया।

सच ही कहा है—

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान,
रस्सी आवत-जात रे सिल पर होत निशान।

अर्थात्—अभ्यास करते-करते मूढ़ भी बुद्धिमान् बन जाता है, जैसे निरन्तर रस्सी की रगड़ से कुएँ की जगत् पर भी निशान पड़ जाता है।

—वन्दना

अनुकम्पा

भगवान् शंकर को प्रसन्न करने हेतु उमा ने अति घोर तपश्चर्या आरम्भ की। ठण्ड में हिमस्रोत में खड़ी रहतीं, गर्मी में पञ्चाग्नि तप करतीं, मूसलाधार बारिश को अपने माथे पर झेलती शिवजी के ध्यान में निमग्न रहतीं। दिन-रात बस एक ही रटन, शंकर... शंकर... शंकर...!!

अभी तक कन्दमूल के आहार पर देह को टिकाये रखा। अब सूखे पत्ते खाना शुरू किया। एकाग्र चित्त से शिव का आराधन करते-करते नज़र दूर... दूर क्षितिज पर टिकी रहती—कहीं वह गौर चन्द्रमौलि की परमोज्ज्वल कान्ति का उदय हो रहा है? कहीं दिगन्त दोलायमान करने वाले नटराज की डमरू-ध्वनि सुनायी देती है?... पर आह! कहीं कोई आसार दिखायी नहीं देते! फिर उमा पत्तियाँ खाना भी छोड़ कर निराहार रहने लगीं। तीनों लोकों में हाहाकार हो गया। पर्ण का भी त्याग करने वाली उमा को देवों ने 'अपर्णा' नाम देकर सम्मानित किया। लेकिन वृषभध्वज शंकर का आसन न डोला तो न ही डोला!

उमा की तपस्या भी कठिन से कठिन होती चली गयी। अब एक पाँव पर खड़ी रह कर जप में लीन रहने लगीं। तब एक ऐसी घटना घटी कि उसने उमा की तपश्चर्या को एक नवीन, असाधारण मोड़ दे दिया।

उमा जहाँ खड़ी थीं, वहाँ पास में कड़ी गर्मी से तप्त एक सूखा सरोवर था—सरोवर का पानी मानों मरणासन्न मनुष्य की आँखों की भाँति चमक रहा था। वहाँ एक शूकर का बच्चा प्यास से व्याकुल होकर आया। पानी पीने के लिए जैसे ही वह सरोवर में उतरा, तत्क्षण कीचड़ में फँस गया। जितना वह बाहर निकलने का यत्न करता, उतना वह गीली कीचड़ में अधिक धँसता चला गया। बेचारे छोटे शिशु को तड़पते देख कर उमा का हृदय अनुकम्पित हो गया। तपस्या-भंग के डर से उन्होंने अपना ध्यान जारी रखने की कोशिश की। पर चित्त विचलित हो रहा था। उनका अन्तर चीत्कार कर उठा। आख़िर तो वे जगन्माता थीं न! वे दौड़ कर सरोवर के किनारे पहुँचीं। परिस्थिति कठिन थी। बच्चे का अब केवल सिर ही दीखता था। उमा ने आर्तता से देवाधिदेव भगवान् शंकर को प्रार्थना की... "हे प्रभो! इस बच्चे को बचा लो... मेरी समस्त तपश्चर्या का फल मैं इसके

जीवन के लिए समर्पित कर देती हूँ...” और आश्चर्य! बच्चे के स्थान पर त्रिभुवन को दीप्तमन्त करता हुआ एक तेजस्वी प्रभामण्डल दिखायी दिया। और उसके बीच प्रकट हुए साक्षात् भगवान् शंकर! उमा के निकट आकर प्रसन्न स्वर से बोले, “हे शुभे! तुम्हारे इस एक ही कृत्य से आज तुमने मुझे ख़रीद लिया है! मैं तुम्हारा क्रीतदास हूँ। मेरे एकाध अति क्षुद्र प्राणी के प्रति तुम्हारी जीवन्त अनुकम्पा, तुम्हारा अनुपम त्याग करोड़ों बरसों की तपश्चर्या से भी महत्तर है। धन्य हो तुम!”

भगवती उमा प्रसन्न चित्त से अपने प्राणप्रिय प्रभु के चरणों में नत हो गयीं।

‘मैत्री’ से साभार — मकरन्द दवे

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत

सम्पादक : वन्दना

स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

लौह युग का अन्त आ गया है, अब बाक़ी है सिर्फ़
मरणासन्न अतीत का अन्तिम भयंकर दौर
और जब वह भी गुज़र जायेगा, झकझोर देगा राष्ट्रों को
धुल जायेंगी सभी दुर्भावनाएँ, जाग उठेगी पृथिवी स्वच्छ-प्रसन्न।

श्रीअरविन्द

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

With best compliments from:

AURO MIRRA INTERNATIONAL SCHOOL,

110, Gangadhar Chetty Road,
Ulsoor, Bangalore-560042
Email:accounts@auroschoolsulsoor.org
www.auroschoolsulsoor.org

AURO MIRRA CENTRE OF EDUCATION

An Integral School,
SSST Nagar, Patiala
E-mail: auromirrapta@gmail.com

SRI AUROBINDO INTERNATIONAL SCHOOL

(A Senior Secondary School)
Sri Aurobindo Marg,
Rose Garden-Bus Stand, Patiala
E-mail: auroschoolpta@gmail.com

Date of Publication: 1st December 2023
Rs. 30 (Monthly)
अग्निशिखा एवम् पुरोधा, दिसम्बर २०२३, वर्ष १, अंक ५, पूर्णांक ५
प्रकाशक स्थलः सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१

SRI AUROBINDO
A New Dawn
A HAND-PAINTED ANIMATION FILM BY SRI AUROBINDO SOCIETY

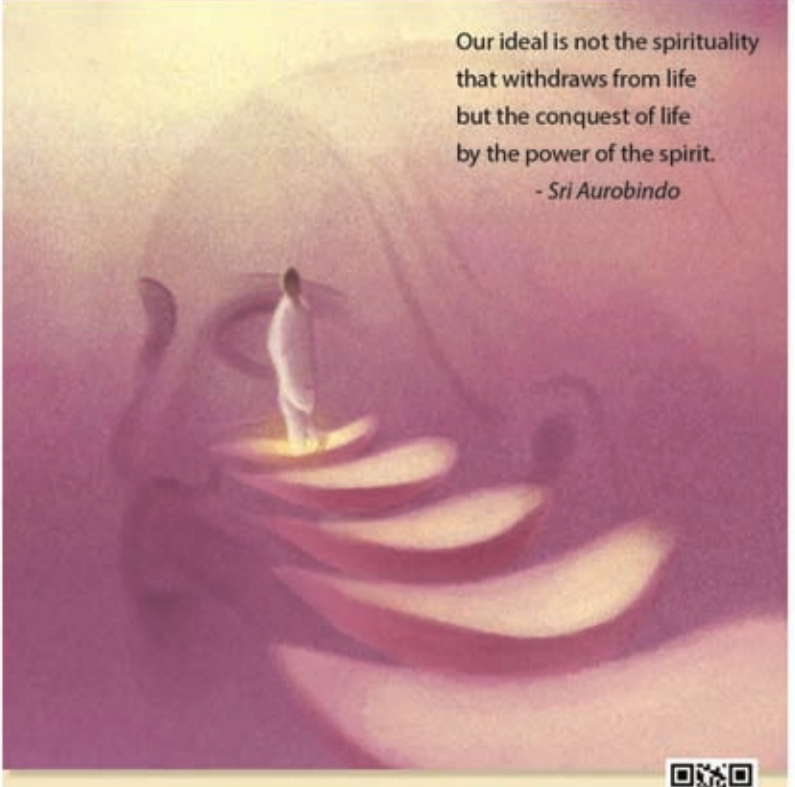

Watch the film at www.anewdawn.in